इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ८ अंक ३ आश्विन मास कलियुगाब्द ५११७ अक्तूबर २०१५

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१(हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्यः
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपय
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

पुण्य स्मृति

करोड़ों के प्रेरणास्रोत

अशोक सिंघल जी — डॉ. प्रवीण तोगड़िया — ३

कर्मयोगी महामानव — चंपत राय — ६

संवीक्षण

हिन्दू धर्म : तीर्थ और पर्वोत्सव — डॉ. विद्या निवास मिश्र — ८

दिव्य विभूति

विश्व के महानतम यायावर

कृष्णद्वैपायन व्यास — डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय — २१

नारी शक्ति

नारी परम्परा का उच्चतम शिखर

पन्ना धाय — के.एस. गुप्ता — ३२

शेष-अशेष

ठाकुर रामसिंह जी और

असम प्रदेश — प्रो. लक्ष्मीश्वर झा — ३६

ध्येय पथ

त्रिदिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद — डॉ. ओम प्रकाश शर्मा — ४४

सम्पादकीय

सांस्कृतिक चेतना के महानायक

*भारत राष्ट्र के आदर्श सनातन जीवन मूल्यों से सांस्कारित सांस्कृतिक चेतना के महानायक **श्री अशोक सिंघल जी** कार्तिक मास, शुक्ल पक्ष, षष्ठी तिथि, कलियुगाब्द ५११७, तदनुसार १७ नवम्बर, २०१५को अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर ब्रह्मलीन हो गए। श्री सिंघल जी का जन्म कलियुगाब्द ५०२८ के आश्विन मास, कृष्ण पक्ष की पंचमी तिथि, २७ सितम्बर १९२६ को पिता श्री महावीर सिंघल के घर उत्तर प्रदेश के आगरा शहर में हुआ था।*

*श्री सिंघल जी जीवन पर्यन्त भारतवर्ष के सनातन प्रवाह तथा जगत् कल्याण के पोषक हिन्दू समाज के गौरव जागरण के कार्य में अदम्य साहस एवं धीरता और गम्भीरता के साथ कटिबद्ध रहे। इन्होंने विश्व हिन्दू परिषद् को अनूठी प्रतिष्ठा और विस्तार प्रदान किया। राम जन्मभूमि आन्दोलन को सिंघल जी ने महत्त्वपूर्ण परिणति तक पहुंचाया और भव्य राम मन्दिर निर्माण के लिए वे **राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहां विश्राम** के हनुमत् संकल्प को शिरोधार्य कर आजीवन संघर्षरत रहे।*

*शोध संस्थान नेरी में वैशाख शुक्ल ५,७,८ कलियुगाब्द ५११० तदनुसार १०,११,१२ मई २००८ को **लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार** विषय पर त्रिदिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन हुआ। इस परिसंवाद के उद्घाटन समारोह में श्रद्धेय सिंघल जी का मुख्य अतिथि के रूप में यहां पावन पदार्पण हुआ। इस अवसर पर **शोध संस्थान परिसर का भव्य प्रवेश द्वार** उनके कर कमलों द्वारा लोकार्पित हुआ। तत्पश्चात् कार्यक्रम मंच पर उनके कर कमलों द्वारा **इतिहास दिवाकर पत्रिका के प्रवेशांक** का लोकार्पण किया गया और परिसंवाद के उपलक्ष्य में अपने सम्बोधन में उन्होंने कहा कि **दुनिया के बड़े–बड़े वैज्ञानिक शोधकर्त्ता जैसे–जैसे अपने शोध कार्यों में आगे बढ़ते जा रहे हैं, वैसे–वैसे वे भारतीय चिन्तन के निकट पहुंच रहे हैं। इसी को सुदढ़ करने की आवश्यकता है। जिस प्रकार का शोध संस्थान यहां खुला है, ऐसे शोध संस्थानों के प्रयासों से ही हम अपने इतिहास को समझ पाने में सक्षम होंगे। हमारे इतिहास की महत्वपूर्ण कड़िया लोकश्रुतियों में जन–सामान्य के पास सुरक्षित हैं। लोक जीवन से जुड़ी सामग्री जुटाने में लगे लोग इतिहास का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। समाज इन कार्यों से प्रेरणा लेगा और भारतवर्ष एक सशक्त शक्ति के रूप में उभरेगा।***

सांस्कृतिक चेतना के महानायक श्रद्धेय सिंघल जी का पराक्रमी पुरुषार्थ और श्रेष्ठ मार्गदर्शन, सन्मार्ग पर आगे बढ़ने की अमूल्य प्रेरणा है।

विनीत,

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर

पुण्य स्मृति

करोड़ों के प्रेरणास्रोत : अशोक सिंघल जी

डॉ. प्रवीण तोगड़िया

जब अशोक सिंघल जी ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा, 'हम सब मिलकर भव्य राम मन्दिर बनाएंगे, हम सब मिलकर हिन्दू राष्ट्र का पुनरुत्थान करेंगे', तब मैं ३६ वर्ष का था। १९९२ में अयोध्या, गुजरात से विश्व हिन्दू परिषद् के युवाओं के साथ गया था। अशोक जी के हाथ में ताकत थी, आत्मविश्वास उनकी आंखों में झलक रहा था। तब वे ६६ वर्ष के थे। इसके कई वर्ष पहले से १० वर्ष की आयु में ही मैं रा.स्व.संघ से जुड़ गया था। मैं ही नहीं, लाखों युवाओं को प्रेरणा देकर अशोक जी ने मां भारती की, हिन्दुओं की सेवा में तत्पर किया।

भगवान श्रीराम का भव्य मन्दिर अयोध्या में राम जी के जन्म स्थान पर ही बने, यह उनका केवल स्वप्न नहीं था, यह उनका अदम्य विश्वास था, उनके जीवन की अटूट प्रतिबद्धता थी। दिन-रात उसी पर अशोक जी कार्य करते रहते थे। संघ के प्रचारक, स्वयंसेवक संगठनात्मक कुशलता सीखते हैं और कार्य, आन्दोलन, सेवा, इन सभी में नियोजन और अनुशासन, ये सभी ऐसे व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग होते हैं। अशोक जी भी ऐसे ही थे। आजकल ही नहीं, तब भी, जब टीवी, इंटरनेट, सोशल मीडिया का चलन नहीं था, यही होता था कि किसी बड़े कार्य करने वाले व्यक्तियों के विषय में संकुचित, अधूरी जानकारी के आधार पर या सरकारी दबाव में सकारात्मक कम और उलटी-पुल्टी खबरें चलाकर उनकी छवि मलिन करने का काम चलता ही रहता था। अशोक जी इस सबसे कभी प्रभावित नहीं हुए। राम मन्दिर के अतिरिक्त अशोक जी ने कई महान कार्य इस देश के लिए किये।

'धर्म संसद' की अनोखी संकल्पना अशोक जी ने विकसित की। देश-विदेश के साधु-सन्तों को राष्ट्र कल्याण और हिन्दू राष्ट्र के एक समर्थ सूत्र में एक करना कोई आसान काम नहीं था। अशोक जी ने धर्म संसद खड़ी की। आगे उसकी व्याप्ति और महत्व ऐसा बढ़ता गया कि अनेक विषयों पर धर्म संसद का एक शब्द, एक प्रस्ताव आदेशयुक्त दिशा का स्वरुप लेने लगा। अशोक जी ने एक बार मुझे कहा, ' इंग्लैंड में प्रधानमन्त्री, अमरीका में राष्ट्राध्यक्ष जब शपथ लेते हैं तब 'गॉड' के नाम पर लेते हैं और उस समय उनके पेरिस के फादर मंच पर या उनके साथ पोडियम के निकट उपस्थित होते हैं। फिर भी विश्व में ये देश 'सेकुलर' कहलाते हैं। कभी हमारे देश में ऐसा होगा कि हमारा धर्म इस देश की राजनीति की दिशा तय करेगा और जब देश के प्रमुख शपथ लेंगे तब हमारे धर्म के प्रमुख उसी सम्मान से उनके साथ आशीर्वाद देते हुए होंगे? ऐसा होगा ही।' उनकी यही अदम्य आशा उनके लिए और इस देश के हिन्दुओं के लिए प्रेरणास्रोत थी। सरकार ने जब रामेश्वरम में रामसेतु तोड़ने का प्रकल्प घोषित किया, तब अशोक जी को धक्का लगा था कि ऐसी दुष्टतापूर्ण योजना कोई बना ही कैसे सकता है! संघ के मार्गदर्शन में जब विश्व हिन्दू परिषद् ने रामेश्वरम में रामसेतु बचाने को

देशव्यापी आन्दोलन चलाया। सरकार को निर्णय बदलना पड़ा। उस शान्तिपूर्ण आन्दोलन के दौरान कई राज्य सरकारों ने पुलिस द्वारा कार्यकर्ताओं पर निर्मम लाठियां चलवायी। इस कारण अशोक जी सरकारों पर बहुत कुपित हुए थे। अशोक जी अपने विचारों पर कायम रहते थे और मनोबल बढ़ाते रहते थे। एक बुद्धिमान अभियंता को, जो जानेमाने व्यवसायी परिवार से हो, उस समय देश के लिए सब कुछ त्यागकर निकलना, विशेषकर जब वे युवा थे, कोई आसान काम नहीं था। अशोक जी का दृढ़संकल्प उनकी शक्ति थी जो आगे जाकर विश्व हिन्दू परिषद् की प्रेरणा बनी। उनके कहने से दो-ढाई दशक पहले जब मैं अपनी अच्छी खासी कैंसर सर्जरी की प्रैक्टिस और परिवार-घर-अस्पताल छोड़कर निकला, तब मेरा पुत्र केवल ७ वर्ष का था। ऐसे अनेक युवाओं को अशोक जी ने प्रेरणा दी थी।

सामाजिक समरता से ही देश आगे बढ़ेगा यह अशोक जी का विश्वास था। छुआछूत मुक्त भारत का जो स्वप्न गुरु गोलवलकर जी, स्वामी चिन्मयानन्द जी, श्री आप्टे जी आदि ने देखकर विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना १९६४ में की थी, उस स्वप्न को पूर्ण करने हेतु अशोक जी ने कई मन्दिरों में सभी जातियों के प्रवेश का अभियान चलाया। उस समय यह बहुत कठिन था, लेकिन अनेक गांवों में जाकर अनेक लोगों से मिलना, बात करना ऐसे सभी अथक प्रयास अशोक जी करते थे।

१९९५ में कश्मीर में अलगाववादियों ने अमरनाथ यात्रा बन्द करने की धमकी दी। अशोक जी के नेतृत्व में विश्व हिन्दू परिषद् ने उस दहशत का मुकाबला किया। १९९२ के राम मन्दिर आन्दोलन के पश्चात् जब केन्द्र में नई सरकार आई, तब अशोक जी आनंदित थे। उनके जीवन का स्वप्न पूर्ण होगा, अयोध्या में भव्य राम मन्दिर बनेगा, ऐसी आशा लेकर उन्होंने देशभर में प्रवास किया। उसके पश्चात जो हुआ ही नहीं उसके लिए उनके मन में दुःख था, लेकिन वे कभी हारे नही। सभी का मनोबल बनाकर रखा और २ वर्ष पहले उनकी वही आशा फिर से जग गई। उनकी वृद्ध आंखों में आशा की एक उज्जवल किरण चमकी और उस ऊर्जा न उनके व्याधिग्रस्त वृद्ध शरीर में भी शक्ति भर दी। फिर से देशभर में प्रवास कर उन्होंने नई सरकार बने, इस पर काम किया। **जब नई सरकार बन गई, तब अनेक हिन्दुओं के साथ अशोक जी की भी वही अदम्य आशा जग गई कि अब आयोध्या में राम जन्मभूमि पर भव्य मन्दिर अवश्य बनेगा। इसी आशा से आज भी उनका हृदय सभी हिन्दुओं में धड़कता होगा। राह देखना, अदम्य आशा का स्वभाव होता है। इस प्रयास में निराशा के झटके भी लगते हैं, किन्तु हम सभी का उत्तरदायित्व है कि अशोक जी वह जीवनस्वप्न पूर्ण करें।**

अशोक जी द्वारा संचालित अनेक कार्य हमारे करने के लिए हैं। समाज में करोड़ों बच्चे, परिवार अच्छे स्वास्थ्य और शिक्षा से वंचित हैं, उन्हें सुविधाएं प्राप्त करवाना संस्कार और संस्कृत एवं वेद का सुलभ भाषा में प्रसार प्रचार करना इत्यादि। अशोक जी ने गोवंश बचाने हेतु देशभर में गोरथ आयोजित किये थे - उनका कार्य आगे ले जाना होगा। अविरल निर्मल गंगा हेतु एक दशक पहले ही अशोक जी के नेतृत्व में विश्व हिन्दू परिषद् ने 'काशी से गंगा सागर' तक यात्रा निकाली थी जिसमें गंगा किनारे बसे गांवों के लोगों को गंगाजी को निर्मल रखने के उपाय समझाए गए थे। यह कार्य आज भी हम सभी की राह देख रहा है। युवाओं को जोड़ने हेतु आरम्भ हुए बजरंगदल और दुर्गावाहिनी पर

भी आज दायित्व है कि सभी कार्यों को आगे ले जाएं।

अशोक जी का शरीर आज भले हमारे बीच में नहीं है, लेकिन उनके द्वारा जलायी गई प्रेरणा की ज्योति उनके जैसी अदम्य आशा लेकर हर हिन्दू में प्रकाशित होती रहेगी। २०२० में जब विश्व हिन्दू परिषद् ७५वीं वर्षगांठ मनाएगी, तब उनके सभी स्वप्न पूर्ण कर कई वर्ष आगे चल पड़ी होगी विश्व हिन्दू परिषद् ! चलें, हम सभी के प्रेरणा-गुरु अशोक जी को सांष्टांग प्रणाम कर धर्मपथ पर आगे बढ़े।

अन्तर्राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष,
विश्व हिन्दू परिषद्

अटूट प्रतिबद्धता - अदम्य विश्वास

कर्मयोगी महामानव

चंपत राय

स्वामी सत्यमित्रानंद जी ने कहा कि ६० वर्ष की उम्र में ही अशोक जी को महात्मा कह देना चाहिए था। भारत में तमाम प्रकार की उपासनाएं हैं, दार्शनिक मार्ग हैं, लेकिन सब मार्गों के सन्त, महात्माओं, धर्माचार्यों को किसी एक मंच पर देश की, समाज की समस्याओं का हल करने के लिए जोड़ देने वाले व्यक्ति थे अशोक सिंहल जी। सभी जानते हैं कि वे जो ठान लेते थे वही करते थे। इसका अर्थ ये नहीं कि वे जिद्दी थे। वे संकल्प के धनी थे, वे आज्ञाकरी भी थे और धैर्यवान बहुत थे। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रतीक्षा करते रहना, लक्ष्य कभी भूलना नहीं-ये उनकी विशेषता थी। साथ ही साथ दया और करुणा का भाव उनमें बहुत अधिक था, छोटे बड़े का विचार नहीं था। उनकी सिक्योरिटी का पीएसओ, गाड़ी चलाने वाला चालक, उनकी सेवा करने वाला सेवक अगर उसके घर में कोई सुख-दुःख है तो बिना किसी से कहे कार्यक्रम अपने आप बनाते थे और चल देते थे। उनको किसी ने निमन्त्रण दिया, नहीं दिया इसका विचार दिमाग में नहीं रखते थे। उनको जानकारी मिलनी चाहिए - ये कार्यक्रम हो रहा है, बहुत महत्त्व का कार्यक्रम है तो बिना बुलाये पहुंच जाते थे। मान अपमान का विचार उनको छू तक नहीं सकता था। मुझे ऐसा लगता है कि वे अपने कमरे के सामने अपने देवता रखते थे। अपने गुरु और परमपूज्य श्री गुरुजी का चित्र रखते थे। कहते थे ये दो ही मेरे गुरु हैं। शायद वह सीधी प्रेरणा वहां से प्राप्त करते थे। इसीलिए उनके निर्णय हृदय से, आत्मा से लिए गए निर्णय होते थे। प्रथम दृष्ट्या तो यह लगता था कि यह कैसे होगा, ये क्या कह रहे हैं लेकिन उनका कहा हुआ हो ही जाता था। अन्ततः सब कहते थे ये सही निकला। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में भी जब उनके पास केवल शाखा का ही काम था तो भी वे देश की तमाम समस्याओं पर बोलते और सोचते थे। विश्व हिन्दू परिषद् में रहकर तो हमें स्पष्ट अनुभव हुआ कि उनकी सोच वैश्विक थी। हर समस्या के बारे में सुनते रहना, अध्ययन करते रहना, चर्चा करना ओर समाधान खोजते रहने की उनमें विलक्षण प्रतिभा थी, शायद भगवान ने ही उन्हें यह जन्मना दी थी। कम लोगों को ही पता होगा कि कानपुर में पता लग गया कि रेलगाड़ी से गाय ले जायी जा रही हैं, उन्होंने कार्यकर्ताओं को लेकर ताले तोड़ दिए, गायों को मुक्त कर दिया और वहां से आगे की यात्रा पर निकले तो किसी की पकड़ में नहीं आए। दिल्ली का झंडेवालान मन्दिर अराजक तत्वों के हाथ में था, श्रद्धालुओं की भावना का सम्मान करते हुए मार-मारकर उन्हें वहां से भगा दिया। आज वह मन्दिर शुद्ध और प्रतिष्ठित है, सबके सामने है लेकिन उनकी व्यक्तिगत लिप्सा कभी उस मन्दिर ने नहीं रही। वेदों का पुनरुद्धार होना चाहिए, उत्तर भारत में वेदपाठ का कंठस्थ करने की परम्परा का बीज उन्होंने धरती पर डाला और आज वह जम गया। देश के माथे से गुलामी के कलंक हटने चाहिए, बच्चे-बच्चे के मन में एक ललक जगा दी। १५२६ में हमारा

अपमान हुआ था उसका परिमार्जन करने की प्रबल भावना जन-जन में जगा दी। देश के हर नौजवान में अपने पावन स्थल को मुक्त करने की चेतना जग गई, देश में हजारों मन्दिर तोड़े गए थे, सभी के प्रति ऐसा भाव जग गया। कभी वन्देमातरम् और भारतमाता की जय के नारे हमारे स्वाधीनता की पहचान थे, वे आज भी याद किये जाते हैं। जय श्रीराम हमारे यहां पहले भी बोलते थे लेकिन 'जय श्रीराम' के नारे में वीरत्व भर दिया। यह अशोक जी का बहुत बड़ा योगदान है। अशोक जी तो शायद पढ़ने के बाद ही साधु जीवन की ओर, सन्यास लेने जा रहे थे लेकिन किसी शक्ति ने ही उन्हें प्रेरणा दी कि भारतमाता की यह दशा है, तुम कहां जा रहे हो। फिर उसी प्रेरणा से उन्होंने सन्तों को जागरूकता पैदा की। जो सन्त केवल भजन करने में भी व्यस्त रहते हैं उन्हें समाज और देश की समस्याओं में भी रुचि लेनी चाहिए। हर आदमी को वैभव अच्छा लगता है। वे तो वैभव छोड़कर घर से आए थे। घर के वैभव के बाद उन्हें किसी ने क्या खिलाया, कहां बिठाया, इस पर उन्होंने कोई विचार नहीं किया। मैं तो समझता हूं भगवान की कोई विशेष शक्ति अशोक जी में अवतरित हुई थी, इसी उद्देश्य के लिए उनका जन्म हुआ था। मैंने एक बार उनसे कहा कि कुछ आराम कर लिया कीजिए तो कहने लगे कि प.पू. श्री गुरुजी ने एक बार कहा था कि आराम तो चिता पर ही होता है।

वास्तव में अशोक जी ने श्री गुरुजी के शब्दों को सार्थक किया। १२ नवम्बर शाम को उन्होंने एक घंटे मुझसे बात की। १३ नवम्बर को केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मन्त्री श्रीमती स्मृति ईरानी को बुलाया, उनसे एक घंटे बात की। इसी दिन रात्रि में ९ बजे स्वामी रामदेव से टेलीफोन पर वार्ता की और इसी वार्ता में उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया तब उन्हें रात्रि २:३० बजे अस्पताल ले जाया गया। १४ नवम्बर को परमपूजनीय सरसंघचालक जी से उन्होंने अपने मन की बात की। अन्तिम समय में अस्पताल में भी लोगों को बुला-बुलाकर वे बातें करते थे। हंसी मजाक नहीं करते थे देश की बात करते थे। १४ नवम्बर के बाद उनकी वाणी बन्द हो गई। उनको वेंटिलेटर लग गया, किडनी का फंक्शन घटने लगा। १७ नवम्बर को दोपहर २ बजकर २४ मिनट पर उनकी सांस बन्द हो गई। अर्थात् कुल मिलाकर साढ़े तीन दिन उन्होंने अपने जीवन में आराम किया। इससे पहले कभी उन्होंने बिमारी में भी आराम नहीं किया, ऐसे विरले ही कर्मयोगी होते हैं। ऐसे महान कर्मयोगी को मेरा कोटि-कोटि प्रणाम।

अन्तर्राष्ट्रीय महामन्त्री,
विश्व हिन्दू परिषद्

संवीक्षण

हिन्दू धर्म : तीर्थ और पर्वोत्सव

डॉ. विद्या निवास मिश्र

बहुतों को लगता है कि हिन्दू धर्म में तीर्थों और पर्वों की संख्या जरूरत से ज्यादा है, इतनी ज्यादा कि जगह-जगह तीर्थ मिल जाता है और दिन-दिन पर्व हो जाता है। क्या आदमी तीर्थ घूमने में सारा जीवन गंवा दे? क्या पर्व मनाते-मनाते उसका उत्साह एकदम चुक नहीं जायेगा? तीर्थों को महत्त्व देने से क्या एक प्रकार के शोषण की व्यवस्था अपने-आप नहीं जन्म लेती? क्या पर्वों के पीछे कोई निहित स्वार्थ नहीं है? ये प्रश्न आज ही नहीं, बार-बार उठाये गये हैं। बौद्ध बाङ्मय में तैर्थिक शब्द अवज्ञासूचक है। कबीर ने तीर्थ की निन्दा की है। महा-भारत में ही कहा गया है –

"सभी नदियां सरस्वती हैं, सभी पहाड़ पुण्य है। हे जाजलि, आत्मा ही तीर्थ है, व्यर्थ में देश-देशान्तर में घूमते हुए दूसरों के अतिथि क्यों बनते हो?"[1]

इसके बावजूद भगवान बुद्ध और सन्त कबीर के जन्मस्थान, कर्मक्षेत्र और निर्वाणक्षेत्र स्वयं तीर्थ बन गये। महाभारत के नायक युधिष्ठिर ने तीर्थयात्रा की, रामायण के नायक श्री रामचन्द्र ने तीर्थों की पूजा की और जहां-जहां गये, वहीं तीर्थ हो गया। आत्मज्ञ श्री आदि शंकराचार्य ने उस आत्मतीर्थ का अवगाहन किया, जिसमें संयम का जल लहराता है, सत्य की धारा बहती है, शील उसको तट की तरह बांधे रहते हैं, उसमें से दया की लहरें उठती रहती हैं, उन्होंने जल से अपनी अन्तरात्मा नहीं शुद्ध की,[2] परन्तु उन्होंने चारों धामों की प्रतिष्ठा की।

इससे लगता है कि तीर्थ की धारणा की गहरी जड़ें हिन्दू मानस में हैं। इसी प्रकार यद्यपि जिस क्षण में सत्संकल्प हो, वही क्षण पवित्र है, इसके बावजूद काल के प्रवाह में कुछ आकर्षक क्षण होते ही हैं जिसे हम प्यार देते हैं। प्रिय का जन्म-दिवस उछाह का दिन होता ही है और हिन्दू ऐसा धर्म है जो अपना प्यार केवल व्यक्तियों को ही नहीं देता, प्रकृति को भी देता है, जिसकी शकुन्तला आश्रम के वृक्ष में पहला फूल लगते ही उत्सव मनाती है और सूर्य-चन्द्रमा-नक्षत्र, नदी-पर्वत-समुद्र, पशु-पक्षी, वनस्पति सभी जिसके आत्मीय है, सभी की प्रसन्नता उसकी अपनी प्रसन्नता है, वह इतने पर्व मनाता है तो यह उसके युक्त और सहभागी उल्लसित भाव का ही प्रमाण है।

हम तीर्थ से बात शुरु करें। तीर्थ का एक अर्थ है, वह घाट जहां से नदी को पार कर सकना सुगम होता है, वैसे लोग सेतु या पुल से भी पार करते थे, पर सेतु से पार करने का अर्थ है केवल ज्ञान हो जाना, ऊपर से देखकर निकल गये, नाव से पार करने से थोड़ा अधिक सामीप्य रहता है जल से, पर तैरकर या चलकर पार करना ही असली पार करना है, क्योंकि तभी नदी में हम होते हैं और हम में नदी होती है। इसीलिए गुरु को तीर्थ कहते हैं, गुरु साथ-साथ रहता है, हम पार हो जाते हैं, फिर गुरु दूसरे को पार कराता है, पर ज्योंही हम गुरु के साथ अपने का जोड़ते हैं, हम विद्या की साधना के साथ जुड़

जाते हैं और हम स्वयं गुरु होने की—तीर्थ होने की—क्षमता अपने में अनुभव करने लगते हैं। तीर्थ का दूसरा अर्थ जल है, क्योंकि अधिकतर तीर्थ या तो नदियों के उद्‌गम हैं, नदियां हैं, सरोवर हैं, सागर हैं या नदियों-झरनों वाले अरण्य प्रदेश, जहां मौन की नदी झरती रहती है। आज भी दक्षिण भारत में पूजा के निमित्त जल या पवित्र भावना से दिया गया जल तीर्थ कहा जाता है, बालिद्वीप में तो गुरुपेदण्ड (पण्डित गुरु) का कार्य ही है। मन्त्र से जल को पवित्र करना, वही जल लोग थोड़ा-थोड़ा घर लाकर धर्मकृत्य करते हैं। इस जल को तीर्थ कहते हैं। जल और नदी से हिन्दू की आत्मीयता जुड़ने के कई कारण है। पहला कारण तो यह है कि उसकी संस्कृति के विकास में जल और अग्नि का बड़ा योगदान रहा है, जहां अग्नि को उसने व्यक्त देवता माना, वहां जल को अव्यक्त देवता माना[३] अग्नि को सृष्टि का अंकुरण माना तो जल को सृष्टि का गर्भ माना और यज्ञ का जल से अपरिहार्य सम्बन्ध देखा।[४] दूसरा कारण यह है उसने वाक् को सरस्वती (जलधार वाली) के रूप में प्रवाहशील शक्ति के रूप में देखा, नदी की गतिशीलता, भाषा की गतिशीलता और धर्म की गतिशीलता—इन सबको जल के एक बिन्दु में देखा।[५] इसी एक बिन्दु का आचमन उसे पवित्र कर देता है। तीसरा कारण है, उसका भौतिक संस्कार भी नदीमातृक रहा है। नदियां उसकी खेती को उर्वर करती रही है। हजार-हजार वर्षों से जोती जाती हुई भूमि नदियों के कारण नई होती रही है। ऋग्वेद में अनेक नदियों का बड़े ममत्व से स्मरण किया गया है—

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं रुचता परुण्ण्या।
असिकन्या मरुद्‌वृधे वितस्तयार्जीवीषे शृणुह्या सुषोमया।।
तुष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्नूवा सरथं याभिरीसये।।

(ऋग्, १०/७५/५-६)

इस देश का नाम ही नदी सिन्धु पर पड़ा और आज जिन लोगों ने जिस कारण हिन्दू नाम हमें दिया, वह सिन्धु ही तो है। सरस्वती तट पर हिन्दुओं ने उसके किनारे-किनारे अनेक सत्र किए। इन सत्रों में ही उपनिषदों का चिन्तन विकसित हुआ।[६]

बाद में इन सत्रों का स्थान आश्रमों ने लिया और निरन्तर नदियों के किनारे, नदियों के उद्‌गम-संगमों के पास लोग इस आशा से आते रहे कि यहां पवित्र जीवन की प्रेरणा मिलेगी, पवित्र भावना वाले व्यक्तियों के संगम से पवित्रता की नई अनुभूति मिलेगी। पुराणों में इन तीर्थों की महिमा, भूभाग की विशेषता, इनकी जल की शक्ति और मुनियों के द्वारा इनके सेवन के कारण हुई।[७] प्रकृति का सौन्दर्य हिन्दू-मन को सदा से प्रिय रहा। वह उसके अपने जीवन का सौन्दर्य लगा, इसीलिए उसने हिमालय को देवात्मा के रूप में देखा। नदियों को देवियों के रूप में देखा और अरण्यों को पुण्यवन के रूप में देखा और उनमें भी उन स्थानों को विशेष प्रिय माना जहां पूर्वजों ने निरन्तर तप किया, जहां देश के कोने-कोने से विचरण करके आये हुए यतात्मा मुनियों के एक साथ समागम होते रहे और उस समागम से धर्म की गुत्थियां सुलझती रहीं, देशकाल के व्यापक आयाम में धर्म के शरीर का परिमार्जन होता रहा।

तीर्थयात्रा देखने में धर्मसाधन का बड़ा ही सस्ता नुस्खा है, पर तीर्थयात्रा की कल्पना हम आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व की करें, जब बैलगाड़ी से तीर्थयात्रा पाप समझी जाती थी। अपने पैरों की तीर्थयात्रा का विधान था, वैसी तीर्थयात्रा करने के लिए जो घर से निकलता था, वह सदा के लिए विदा मांगकर निकलता था, बल्कि इसीलिए वह काषाय-वेश धारण करके निकलता था। ऐसे व्यक्ति को ही तीर्थयात्रा की अनुमति थी जो अपने कर्तव्य का पालन कर चुका हो, जो व्यक्ति अपने तीनों ऋणों से मुक्त नहीं है, उसे तीर्थयात्रा का फल नहीं मिलता।[८] तीर्थ-यात्रा करने वाला व्यक्ति निर्वर्ण होकर तीर्थयात्रा करता है, वह सर्वभूतात्मा होकर तीर्थयात्रा करता है, इसीलिए तीर्थ में किसी से जाति-पाति पूछना भी अधर्म है। तीर्थयात्रा एक प्रकार से काल का अतिक्रमण करके देश में प्रवेश है। जिस समय आदमी घड़ी-घड़ी घड़ी न देखे, उस समय वह देश देखने चले और देश से अपने को जोड़ने चले। राष्ट्रीयता की अवधारणा इस देशमयता की अवधारणा से मुझे कुछ छोटी लगती है, क्योंकि राष्ट्रीयता की अवधारणा में आदमी सोचता है, असम से राजस्थान तक, कश्मीर से कन्याकुमारी तक जो यह देश फैला हुआ है, हमारा राष्ट्र है, पर तीर्थ-भावना से की गई देश से तादात्म्य की अवधारणा में प्रतीति होती है कि हम इनके हैं, इन नदियों, पर्वतों, अरण्यों, सागरों, स्रोतों के हैं, हम इनको देखते हैं तो अपने स्वरूप को और अच्छी तरह पहचानते हैं, इनको छूते हैं तो हम कालजयी होते हैं, क्योंकि इनको छूने के क्षण में ही हम कई सहस्राब्दियों के स्पर्श को छूते हैं, जो स्पर्श हमारा है, हमारे पूर्वपुरुषों की अनवच्छिन्न शृंखला का है। तीर्थयात्रा घूमने का, पिकनिक मनाने का या अपने कर्तव्य से पलायन का कोई उपक्रम नहीं है। तीर्थयात्रा करने से पूर्व व्रत करने का विधान है, तीर्थ में रहते हुए तीर्थ के नियम-पालन करने का विधान है। प्रयाग के माघ मेले में गरीब-अमीर सभी जमीन पर पुआल पर कम्बल बिछाकर सोते हैं, एक समय भोजन करते हैं, जाड़े में भी बहुत सवेरे स्नान करते हैं। इन सबके पीछे भाव यह रहता है कि तीर्थ में आओ तो सामान्य जन बनकर आओ, अपनी विशेष स्थिति घर छोड़कर आओ।

अब तीर्थ में इस संकल्प का अनुचित लाभ उठाने वाले रहते हैं और तीर्थ-यात्रियों के कष्ट सहने के संकल्प को पूरा करने के लिए अपनी ओर से कष्ट देते हैं तो यह दोष न तीर्थ का है, न तीर्थयात्रा के विधान का। यह दोष है व्यवस्था का, जो समता की बात तो नारे के रूप में करती है, पर समता की सिद्धि के इतने बड़े अनुष्ठान के लिए उचित प्रबन्ध नहीं करती, उनसे कर लेकर भी उनकी उचित व्यवस्था नहीं करती। वह पर्यटकों के लिए एक-से-एक डीलक्स होटल बनवायेगी, पर तीर्थयात्री के लिए छाया की, मामूली जीवन-सुविधा की व्यवस्था करने में धर्मनिरपेक्षता से च्युत हो जायेगी। हां, उसकी चिन्ता तब भी विशेष राजकीय व्यक्ति के लिए रहेगी। मन्त्री और अफसर आराम से भीड़ से बचकर नहा लें, इसको सुनिश्चित करना उसका प्रमुख कर्तव्य है। काशी, वृन्दावन, अयोध्या, तिरुपति, रामेश्वरम्, पुरी कही भी जायें, आपको यही लगेगा कि सम्पन्न के लिए व्यवस्था है, असम्पन्न के लिए नहीं। कम-से-कम तीर्थ में ही सम्पन्न-असम्पन्न का भेद न रहे। सम्पन्न व्यक्ति भी समान रूप से कठिन जीवन व्यतीत करे, असम्पन्न व्यक्ति भी तीर्थ में आदमी का व्यवहार पाये, यह

बात किसी के दिमाग में आती ही नहीं। एक प्रसिद्ध तीर्थ के एक स्थल में न्यास है। उसके अधिकारियों से मैंने बात की, आप दुकानें और अतिथिगृह तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के बनवा रहे हैं, पर अधिकतर आदमी तो तीर्थ की भावना से आयेगा, उसके विश्राम की जगह, उसके लिए सार्वजनिक स्नानगृह क्यों नहीं बनवा रहे हैं, इसे टूरिस्ट कॉम्पलेक्स क्यों बना दे रहे हैं? उनका उत्तर था कि टूरिस्टों से आमदनी होगी, उनसे बाहर प्रचार होगा और आमदनी नहीं होगी तो मन्दिर की व्यवस्था कैसे होगी? जब मुझे लगता है कि अमुक श्रेणी की फीस देने पर अमुक प्रकार के दर्शन आसानी से होंगे, तो फिर यही लगता है जो कुछ स्थान बचे थे, जहां आदमी अनुभव कर सकता था कि यहां कोई छोटा-बड़ा नहीं है, वे स्थान भी छिन गये।

जो बात इन स्थावर तीर्थों के सम्बन्ध में है, वही जंगम तीर्थों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। अधिकतर बाबा भी सम्पन्न के प्रति, पदप्रतिष्ठा के प्रति विशेष रुझान रखते हैं, कुछ ही हैं जो भावशुद्धि जिज्ञासुता को आदर देते हैं। परिणाम यह है कि लगता है पूरा देश सफलता के सस्ते नुस्खों के पीछे मरा जा रहा है। मन्दिर या बाबा का महत्त्व बस मनौती तक सीमित रह गया है। इसी कारण जो व्यक्ति इन घटिया तीर्थयात्राओं से दुःखी होता है, वह तीर्थ की आलोचना करता है, उसे काशी, प्रयाग, गया, अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, पुरी, कामाख्या, कांची, तिरुपति, कन्याकुमारी– जैसी जगहों से केवल उद्वेग है कि यहां कितनी गंदगी है, कितना पापाचार है, कितना ढोंग हैं, गरीब और निरीह का कितना शोषण है, कैसी भेड़ियाधसान भीड़ है, कैसा अनियंत्रित रेला चला जा रहा है आदमियों का, कितनी जहालत है! परन्तु क्या यह तीर्थ-भावना का दोष है या तीर्थ-भावना के अभाव का परिणाम है! यह लोग नहीं सोच पाते कि तीर्थ-भावना स्वेच्छा से विसर्जन की भावना है, लुटने की भावना है, निःस्व होने की भावना है, विशेष के रूप में मरने की और सामान्य के रूप में जीने की भावना है, अपने कलुष धोने की भावना है, लोगों की निष्कलुष मानने की भावना है, विश्व के प्रति कृतज्ञता की भावना है, अपने पूर्वपुरुषों के तप से, त्याग से स्मरण के द्वारा जुड़ने की भावना है। वे तीर्थस्थान के लिए स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीत सुनते तो उन्हें पता चलता कि यह यात्रा किधर जा रही है? बुन्देलखण्ड में कार्तिक नहाने का गीत है–

आ जाऊँगी बड़े भोर दही रे ले के

(बड़े सवेरे ही दही लेकर आ जाऊँगी, कन्हैया तुमसे लुटने के लिए)

अवध में स्त्रियां कार्तिक नहाने के लिए जाती हुई गाती हैं–

रघुवर संगे जाब, हम न अवध में रहवें

(हम भी रामचन्द्रजी के साथ वन जायेंगी, अयोध्या में नहीं रहेंगी, राम के बिना अयोध्या उदास लगती है।

इन गीतों से लगता है कि तीर्थस्थान कितना बड़ा संकल्प है, कितना बड़ा भावैक्य है, बड़े सुख के लिए छोटे सुख से उत्सर्ग की कितनी बड़ी बुद्धिमत्ता है। जो धर्म की दुकान लगाते है, वहां हिन्दू धर्म नहीं रहता, वह रहता है इस जन-पारावार में जो तीर्थ में एक साथ सन्तरण कर रहा है, जो सचमुच जीवन के रस का आस्वाद पा रहा है, कोई इसे अंधविश्वास माने, पर जिससे सच्चाई का इतना गहरा

रिश्ता जुड़ता हो कि तीर्थ में, गंगा में झूठ नहीं बोलेंगे, उसे छोटा या अंधा मानने को मन नहीं होता। 'गंगा के जल में' रासायनिक गुण हैं या नहीं, या जो थे वे भी तकनीकी अंधविश्वास के कारण लुप्त हो रहे हैं या बढ़ रहे हैं, इसका निर्णय तो परिवेशविज्ञानी करेंगे, पर गंगा में या किसी भी तीर्थ के जल में असंख्य मनुष्यों की पवित्र भावना की सूक्ष्मशक्ति का सघन संचयन तो है ही, क्या इतने आश्चर्यों का स्रष्टा मानव मन शक्ति का विकिरण यहां नहीं करता रहा है, इस जल से जुड़कर कि वह जुड़ने वाले कलुषित-से-कलुषित मन का शोधन न कर सके और हां, तीर्थ-भावना रहती तो हम जितने आज बेपानी हो गये हैं, उतने बेपानी न होते, हमारी नदियां कृशकाय हो गई, सरोवर पट गये, पर्वत नंगे होते जा रहे हैं, जंगल में मौन की नहीं कुल्हाड़े की चोट की नदी बहती है, नदियों का प्रवाह तकनीकी कचरे से रुंध रहा है। आदमी की भूख सौन्दर्य खाती जा रही है, प्रकृति का भी, अपना भी। तीर्थ की भावना न होने के कारण ही हमने दुर्गम स्थानों को सुलंघ्य बनाया, कठिन यात्रा का रोमांच समाप्त कर दिया, ऐसे स्थानों की शुचिता अपने पिकनिकी उच्छिष्टों से नष्ट कर दी। आज से तीस वर्ष पहले कोई काशी या प्रयाग में नदी के किनारे साबुन नहीं लगा सकता था, आज काशी का हर घाट धोबीघट्टा है, फल यह है कि साबुन की झाग की एक पर्त जल के ऊपर बिछ गई है, तेल की चिकनाई तैर रही है। हिन्दू ने परिवेश की पवित्रता को अपनी पवित्रता के स्रोत के रूप में देखा था, इसलिए उसने हरे पेड़ काटने को पाप माना, सरोवर खुदवाने को पुण्य माना, पैदल पहाड़ चढ़कर बद्री-केदार दर्शन को अधिक फलप्रद माना, अरण्य की शक्ति को नगर की कृत्रिमता के संतुलक के रूप में आदर दिया। आज तीर्थ-भावना नहीं रही, उपभोग-भावना प्रबल हुई, काशी और वृन्दावन, तीर्थ न रहकर टूरिस्ट आकर्षण के केन्द्र हो गये। तीर्थयात्रा का जो व्यापक उद्देश्य था, वह राष्ट्रीयता का अस्त्र बनकर रह गया।

सच्ची तीर्थ-भावना केवल यात्रा से नहीं पूरी होती, न स्नान से, न श्राद्ध से, न दान से, वह पूरी होती है आत्मविसर्जन से (कितना आदमी अपने को विशाल प्रवाह में बहने के लिए छोड़ सकता है), वह पूरी होती है ऐसे उल्लास से जिसमें सभी पवित्र लगते हैं, साथ नहाने वाले आदमी, नहाया जाने वाला तीर्थ और उस आदमी की श्वास सब कुछ। तीर्थयात्रा का विधान इसीलिए प्रायश्चित्त के उद्देश्य से किया गया है, कि तीर्थ में अंहकार ध्वंस होता है, उसके साथ-साथ अंहकार के पाप का भी ध्वंस हो जाता है, तीर्थ यात्रा का कठिन कृच्छ्र शरीर और चित दोनों की शुद्धि करता है। तीर्थ यात्रा का विधान श्राद्ध के उद्देश्य से किया जाता है, उसका भी कारण यही है कि तीर्थ में पूर्व पुरुषों के तप से आदमी जुड़ता है और उन्हें श्रद्धा निवेदन करके उस तप से स्वयं संस्पृष्ट होता है। तीर्थयात्रा इसलिए एक प्रकार का आत्मयज्ञ है। तीर्थ हिन्दू-संस्कृति के इसीलिए केन्द्र बने कुछ तीर्थ विद्या और कला के विशेष केन्द्र बने (जैसे काशी, मथुरा, रांची उज्जयिनी), कुछ तीर्थ परिव्राजकों के विशेष पर्वों पर समागम के पड़ाव बने, जैसे प्रयाग या हरिद्वार या नासिक या उज्जैन (जहां बारह-बारह वर्ष पर कुम्भ लगते हैं) और कुछ तीर्थ नित्य लीलाधाम के रूप में प्रतिष्ठित हुए, जैसे श्रीराम से सम्बद्ध अयोध्या, चित्रकूट, पंचवटी और रामेश्वर, श्रीकृष्ण से सम्बद्ध मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, द्वारिका, उज्जयिनी (जहां उन्होंने विद्याध्ययन किया), भगवान बुद्ध से सम्बद्ध लुम्बिनी, गया, सारनाथ और कुशीनगर श्री आदि

शंकराचार्य से सम्बद्ध कालड़ि (जन्म-स्थान), ओंकारेश्वर (दीक्षा-स्थान), काशी, बदरिकाश्रम समेत चारों धाम (जिन्हें उन्होंने हिन्दू धर्म के चार स्तम्भों के रूप में पुनः प्रतिष्ठापित किया), श्रीनगर का शंकराचार्य गिरि (जहां उनका सारस्वत अभिषेक हुआ), अन्य संन्तों और आचार्यों के कर्मक्षेत्र (पंढरपुर, उडुपी, नवद्वीप, पुरी, वृन्दावन, ननकाना साहब जैसे स्थान) और कुछ तीर्थ शिव और शक्ति के धाम के रूप में प्रसिद्ध हुए इन सबकी सूची बहुत लम्बी है।[६] इतनी लम्बी सूची दो बात बतलाती है, एक तो यह कि प्रत्येक स्थान में तीर्थ होने की क्षमता है, दूसरे यह कि जो स्थान किसी विशेष उपस्थिति से पवित्र हुआ है, उसका विशेष महत्त्व है, क्योंकि वह उपस्थिति किसी-न-किसी रूप में उस स्थान के कण-कण में बसी रहती है।

वृन्दावन में श्रीकृष्ण की नित्य लीला चलती रहती है, चित्रकूट में श्रीराम सदैव वनवासी हैं, कामाख्या में शक्ति का परिस्फुरण नित्य होता रहता है, काशी में शिव घूमते रहते हैं, बदरिकाश्रम में नरनारायण नित्य तपस्यारत हैं, इस प्रकार का अनुभव ही तीर्थयात्रा का परम फल है, मुक्ति या पापनिवृत्ति तो छोटे फल हैं। काशी में मरने से मुक्ति होती है या गंगाजल पीकर मरने से या गंगा में अस्थि प्रवाहित होने से मुक्ति होती है, इन सबका एक ही अभिप्राय है कि जीवन की सार्थकता प्रवाहधर्मी होने में, तीर्थ की तरह परार्थ होने में है।

इसलिए तीर्थयात्रा जीवनयात्रा का विराम नहीं, न धर्म की इतिश्री है, यह धर्म के संकल्प का पुनर्नवीकरण है और इसीलिए तीर्थ नये होंगे, प्राचीन तीर्थ में नये कुछ और भाव जुड़ेगे, तीर्थ बनेंगे, तीर्थ लुप्त होंगे, पर पार जाने की इच्छा जब तक है, तब तक तीर्थयात्रा की आवश्यकता बनी रहेगी, संत कबीर और महर्षि दयानन्द से सम्बद्ध स्थल आज तीर्थ है, महात्मा गांधी का साबरमती आश्रम आज नहीं तो कल तीर्थ हो जायेगा।

इस बात की आवश्यकता है कि तीर्थों की गरिमा की रक्षा की व्यवस्था की जाये। तीर्थ-पुरोहितों के प्रशिक्षण और उनकी सेवाओं की व्यवस्था की जाये। सामान्य तीर्थयात्रियों के लिए आवास और सफाई की व्यवस्था ऐसी की जाये जो सबको सुलभ हो सके, तीर्थ-पुरोहितों के पास जो स्थान हैं, (जिन्हें वे सुलभ कराते हैं) उनकी मरम्मत और सफाई के लिए राज्य व्यवस्था करे। जनतान्त्रिक राज्य की धर्मनिरपेक्षता का यह अर्थ नहीं होता है कि अधिसंख्य जनता की धार्मिक आकांक्षा की पूर्ति के लिए की गई देशयात्रा की व्यवस्था उसके लिए केवल न्याय और शान्ति-व्यवस्था या स्वास्थ्य-व्यवस्था मात्र हो।

अब पर्वों पर आयें। तीर्थ प्रवाहवान् देश का साक्षात्कार है तो पर्व प्रवाही काल का। ऋतु को बदलते देखना, उसकी रंगत पहचानना, उस रंगत का असर अपने भीतर अनुभव करना, खुले आकाश के नीचे समय की गति को अयांत्रिक और आनुभविक पैमाने से नापना हिन्दू जीवन के अभ्यास में विहित है। सूर्योदय, मध्याह्न और सूर्यास्त उसके विष्णु के तीन पग हैं। पूरा वर्षचक्र जीवनचक्र है। संवत्सर शब्द का अर्थ है वत्सल, वर्ष का अर्थ है बरसाने वाला, वर्ष-पर-वर्ष मंगल की पूर्ति है, जीवन पूर्ति है, वृष्टि है। पर्व का अर्थ होता है गांठ या पोर, बांस जैसे-जैसे ऊपर बढ़ता जाता है, एक-एक नया

पोर छोड़ता जाता है, पर्व वृद्धि का परिमापक है, साथ ही वह संधि है जो एक अंश और दूसरे अंश के बीच में दोनों को जोड़ने के लिए स्थित है। गन्ने का पर्व न हो तो रस न सुरक्षित हो। पर्व का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ भरने वाला है। हिन्दू धारणा काल को अखण्ड भी मानती है, खण्ड भी मानती है, निरवधि भी मानती है, सावधि भी मानती हैं। वह इन दोनों काल-रूपों में पर्व को संधि के द्वारा बांधता है। वह अपने प्रत्येक संकल्प में निरवधि काल और सावधि-काल दोनों का स्मरण करता है, वह अपने को सृष्टि के आदि से जोड़ता है और वर्तमान सावधि-गणना का भी स्मरण करता है। इसलिए पर्व का एक निश्चित समय है और साथ ही उसकी पुनरावृत्ति भी।

हिन्दू पर्व प्रायः उत्सव है। उत्सव 'सवन' से व्युत्पन्न शब्द है, सोम का रस निकालना ही सवन है, वह रस जब ऊपर छलक आये तो उत्सवन या उत्सव है। हिन्दू पर्व में रस का आपूरण और उच्छलन दोनों होता है, जैसे कार्तिक की पूर्णिमा के चन्द्रमा में रस भर जाता है और उसमें बंधा नहीं रह सकता, वैसा ही कुछ घटित होता है पर्व मनाने वाले भाववान् हिन्दू में। जैसे सभी भूमि पवित्र होती हुई भी कुछ भूमि अधिक पवित्र होती है, उसके साथ कुछ महत्त्व जुड़ा रहता है। वैसे ही सभी क्षण पवित्र होते हुए भी कुछ क्षण विशेष पवित्र होते हैं। हिन्दू धर्म में जन्म-दिन मनाने पर बल है, श्रीराम या श्रीकृष्ण की निधन-तिथि कोई नहीं मनाता। अपने दिवंगत पिता की निधन-तिथि पर एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया जाता है पर वह व्यक्तिगत है और पार्वण श्राद्ध का प्रारम्भिक कृत्य है, पर्व नहीं है, हां श्राद्ध पर्व के रूप में मनाया जाता है, पर उसमें पितरों के स्मरण से आप्यादित होने का उल्लास है, श्राद्ध के प्रत्येक मंत्र में तृप्ति और स्वधा का बोध होता है। कई पर्व व्रत के पर्व हैं (आजकल व्रत के नाम पर कुछ अधिक भोजन या भोजन-परिवर्तन पर ही बल है, वह अलग बात है), पर उस व्रत का भी तात्पर्य यही है कि शरीर और मन को दूसरे भोगों से विरत करो, स्वयं को भोग्य बनाओ और तब अमृत के भोक्ता बनो, अमृत से उस रिक्त स्थान को भरो। अमावस्या और पूर्णिमा– ये दो तिथियां वैदिक युग से इसीलिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, अमावस्या में चन्द्रमा सूर्य की छाया से पूर्णतः निगीर्ण हो जाता है, पूर्णिमा में वह पूर्ण हो जाता है। यह भौतिक व्यापार वस्तुतः सोमयाग है, सोम की आहुति अग्नि में होती है। अग्नि की स्फीति होती है और पुनः सोम एक-एक कला बढ़ाते-बढ़ाते नवजन्म पाता है। आनन्दकुमार स्वामी[१०] ने इसकी व्याख्या इस रूप से की है कि सोम आदित्य द्वारा अमावस्या (साथ संगमन की रात्रि में) निगीर्ण होता है, और जो निगीर्ण होता है, वह फिर भोक्ता सूर्य के नाम से ही पुकारा जाता है, वह आदित्य हो जाता है.... जैसे, सूर्य उषा को प्रतिदिन और सोम (चन्द्र) को प्रतिमास आत्मसात् करता है और यह संदृश्य होता है, यह दिव्य सायुज्य (विवाह) तुम्हारे भीतर भी सम्पन्न होता रहता है जब तुम्हारे दक्षिण और वाम नेत्र में स्थित सूर्य और पूर्व हृदयगुफा में प्रविष्ट होकर एक होते हैं। वैदिक काल में दर्श (अमावस्या) और पौर्णमास (पूर्णिमा के समय किया गया) दो प्रमुख इष्टियाँ (यज्ञ) थीं। वे ही सब यज्ञों की प्रकृति कही जाती थी।

बाह्य काल के मोड़ से सम्बद्ध मुख्य हिन्दू पर्व है, सूर्य के उत्तरायण की तिथि मकर सक्रान्ति। इस तिथि पर सर्वत्र भारत में उत्सव मनाया जाता है, असम में माघ बिहू (भोगाली बिहू), बंगाल में पौष

पार्वण, दक्षिण में पोंगल, उत्तर भारत में खिचड़ी (मकर-संक्रान्ति) के नाम से। यह पर्व स्नान-दान और नये चावल से भोग के पर्व के रूप में मनाया जाता है। सूर्य की मेष-संक्रान्ति भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वह बसन्त ऋतु का पर्व है, कई प्रान्तों में वर्षारम्भ का पर्व है, उतर भारत में तप के (आतप-धूप के) प्रखर होने का प्रारम्भ है, इस पर्व के साथ नये अनाज भूनकर पीसे जाते हैं, उनका प्राशन नये आम की कैरियों के साथ किया जाता है। सूर्य की कन्या-संक्रान्ति पितरों का पर्व है, इसमें आश्विन के कृष्णपक्ष में पितरों के श्राद्ध किये जाते हैं। आश्विन और चैत्र दोनों महीने दिन-रात के समपात के महीने होते हैं। इन दोनों महीनों में सन्तुल-बिन्दु बाहर के काल में और अपने शरीर के भीतर काल में ऐसे आते हैं कि उसमें शक्ति का आवाहन किया जा सकता है, इसलिए दोनों महीनों के नवरात्रों में देवी की उपासना का पर्व मनाया जाता है। शारद और वासन्तिक नवरात्र कृषि-जीवन की दृष्टि से भी शस्य-परिपाक के आस-पास आते हैं, इसलिए कृषकों के लिए उत्साह का अवसर रहता है, जगद्धात्री के प्रति विनम्रता की अभिव्यक्ति इस उत्साह के साथ जुड़ कर कर्म शक्ति की सार्थकता में वृद्धि करती है।

चन्द्रमा की घटती-बढ़ती कला के अनुसार तिथियां होती हैं। पूजापाठ और अनुष्ठान की दृष्टि से चान्द्र तिथि का ही प्रयोग समस्त हिन्दू समाज में होता है, यहां और बाहर बालि में, थाईलैंड और लाओस में भी, यही नहीं समस्त दक्षिण-पूर्वी एवं पूर्वी एशिया में। इस्लाम भी चान्द्र तिथि को महत्त्व देता है। केवल इतना है कि इस्लामी कालगणना में चान्द्र वर्ष और सौर वर्ष के सन्तुलन के लिए ३५ महीनों के बाद अधिमास का (लौंद या अतिरिक्त चान्द्र मास) का विधान नहीं है, पर हिन्दू गणना चान्द्र और सौर बरसों को संयोजित करती हुई चलती है। वेदों में चन्द्रमा का सम्बन्ध विराट् पुरुष के मन से माना गया है, चन्द्रमा को अव्यक्त रहस्य, उसकी साधना, उस साधना से प्राप्त अमृतत्व से जोड़ा गया है, इसलिए हिन्दू अनुष्ठान सूर्योपासक होते हुए भी चन्द्रमा की आह्लादकता की अपेक्षा रखता है। चान्द्र तिथियों में दो प्रतिपदाएं, कार्तिक शुक्ल की प्रतिपदा (जब अन्नकूट की पूजा होती है; जब व्यवसायियों का वर्षारम्भ होता है और चैत्र शुक्ल की प्रतिपदा (अधिसंख्य लोग वर्षारम्भ इसी से मानते हैं); दो द्वितीयाएँ, कार्तिक शुक्ल की (भ्रात् द्वितीया, भाई के पर्व के रूप में, इसे ही यमद्वितीया भी कहते हैं) और आषाढ़ शुक्ल की द्वितीया (इसी को रथ-यात्रा की द्वितीया कहते हैं, इस दिन जगन्नाथजी को चलविग्रह रथ पर चढ़ाया जाता है, उस रथ की यात्रा होती है), तीन तृतीयाएं, वैशाख शुक्ल की अक्षय तृतीया (जिसे कृतयुग का प्रारम्भ दिन माना जाता है और परशुराम अवतार का आविर्भाव दिन माना जाता है), भाद्रपद शुक्ल तृतीया (हरतालिका व्रत, स्त्रियों का सौभाग्य व्रत), श्रावण शुक्ल तृतीया (श्रावणी तीज, मुख्यतः स्त्रियों का व्रत); तीन चतुर्थी तिथियां, भाद्रपद और माघ कृष्ण की (दोनों गणेश-चतुर्थी के महोत्सव के रूप में मनाई जाती है, और कार्तिक कृष्ण चतुर्थी (संकष्टा चतुर्थी, यह भी स्त्रियों का ही मुख्यतः व्रत है); चार पंचमी, (श्रावण शुक्ल पंचमी, नागपंचमी, मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी, विहार पंचमी (वृन्दावन में) और जानकी विवाह पंचमी (अवध और मिथिला में), माघ शुक्ल पंचमी, (श्री पंचमी, वसन्त पंचमी या सरस्वती जन्म-दिन का उत्सव) और भाद्रपद

शुक्ल ५ (ऋषि पंचमी); चार पष्ठी (आषाढ़ शुक्ल ६, स्कन्दपष्ठी, भाद्रपद कृष्ण ६, हल पष्ठी – पुत्रव्रत, भाद्रपद शुक्ल ६, सूर्य षष्ठी, कार्तिक शुक्ल ६, सूर्यषष्ठी); एक सप्तमी (माघशुक्ल सप्तमी–अचला सप्तमी); तीन अष्टमी (श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, भाद्रपद कृष्ण पक्ष में, राधाष्टमी, भाद्रपद शुक्ल में, गोपष्टमी, कार्तिक शुक्ल में); दो नवमी (श्रीरामनवमी चैत्र शुक्ल में, श्री जानकी नवमी वैशाख शुक्ल में), दो दशमी (विजय दशमी, आश्विन शुक्ल में और गंगा दशहरा, ज्येष्ठ शुक्ल में); एकादशी सभी (विशेष करके देवोत्थान एकादशी कार्तिक शुक्ल में, रंगभरी एकादशी फाल्गुन शुक्ल में और भीमसेनी एकादशी ज्येष्ठ शुक्ल में), वामनद्वादशी (भाद्रपद शुक्ल में); तीन चतुर्दशी (नरक चतुर्दशी कार्तिक कृष्ण और महाशिव-रात्रि फाल्गुन कृष्ण में, अनन्त चतुर्दशी भाद्रपद शुक्ल में); तीन अमावस्या विशेष रूप से (महालया अमावस्या आश्विन में, दीपावली कार्तिक में, मौनी अमावस्या माघ कृष्ण में); छः पूर्णिमाएं (वैशाख की वैशाखी, आषाढ़ की व्यास पूर्णिमा, श्रावण की रक्षाबन्धन पूर्णिमा, आश्विन की शारद् पूर्णिमा, कार्तिक की पूर्णिमा, माघ की पूर्णिमा और फाल्गुन की पूर्णिमा, होली)। इनमें प्रायः अमावस्या-पूर्णिमा की तिथियां स्नान के पर्व हैं, विशेष रूप से कार्तिक, माघ और वैशाख की पूर्णिमाएं और माघ तथा आश्विन की अमावस्या और वे पूर्णिमाएं जिनमें चन्द्रग्रहण लगता है तथा वे अमावस्या तिथियां जिनमें सूर्यग्रहण। समस्त अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी तिथियां देवी की पूजा की तिथियां हैं, कृष्णपक्ष की अष्टमी की रात्रि देवी की शक्ति के विशेष स्फुरण की तिथियां है। सभी एकादशियां विष्णु को प्रिय हैं, पर कृष्णपक्ष की एकादशी का व्रत अधिकतर विरक्त लोग ही करते हैं। सभी त्रयोदशी तिथियां (विशेष रूप से कृष्णपक्ष की) शिव को प्रिय हैं, शिवाराधक इनमें प्रदोष व्रत करते हैं। इनके अलावा सूर्य और स्कन्द को षष्ठी, गणेश को चतुर्थी प्रिय हैं।

सबसे अधिक जनप्रिय पर्व दो प्रकार के हैं, एक तो अवतारों से सम्बन्ध जैसे श्रीकृष्ण जन्माष्टमी और श्रीरामनवमी, दूसरे हैं सार्वजनिक उत्सव जैसे दीपावली, होली, दशहरा (विजयादशमी) और रक्षाबन्धन। तीसरे हैं, व्रतों से सम्बन्ध (यद्यपि जन्माष्टमी और रामनवमी भी व्रत के दिन होते हैं, पर उनमें व्रतों के साथ-साथ सामूहिक रूप से उत्सव होते हैं, केवल व्यक्तिगत स्तर पर उत्सव नहीं होता) जैसे, देवोत्थान एकादशी या महाशिवरात्रि। विभिन्न सन्तों और आचार्यों की जयन्तियां भी पवित्र तिथियों के रूप में मनायी जाती हैं।

हर प्रदेश के अपने विशेष पर्वोत्सव हैं, बंगाल में आश्विन शुक्ल के नवरात्र की दुर्गापूजा, असम में माघबिहू, समस्त भारत में मकर संक्रान्ति और दीपावली, उत्तर भारत में होली, राजस्थान में गणगौर, महाराष्ट्र में श्रीगणेशोत्सव, केरल में ओणम, उड़ीसा में आषाढ़ की रथयात्रा, पंजाब में वैशाखी (वैशाख से प्रारम्भ) और प्रायः सभी क्षेत्रों में श्रीकृष्ण और रामनवमी, कई राज्यों में राम के विजयपर्व के रूप में विजयादशमी अधिक उल्लास के साथ मनाये जाते हैं।

होली का पर्व प्राचीन काल के तीन दिनों मदनोत्सव का परिवर्धित रूप है, यह रंग का त्योहार है, गीतों का त्योहार है और ऋतुराज के आगमन में उनके अनुकूल अपने को ढालने का त्योहार है, वर्षारम्भ के पूर्व अनेक देशों में एक प्रकार का उन्मादन भाव, उन्मुक्त भाव छा जाता है। हिन्दुस्तान का

वसन्त काफी लम्बा होता है, हर पेड़ का वसन्त अलग होता है, पर सबसे पहले आम ही वसन्त के आगमन का संकेत अपनी मंजरी की गन्ध से और उस गन्ध से आकृष्ट-कोकिल की कूक से देता है। लगभग पूरा फाल्गुन उल्लास का महीना है। इधर मादन का अर्थ कुछ बदल गया है और यह त्योहार भी शहर में कुछ अधिक आक्रामक हो गया है, पर गांव की होली में यद्यपि शृंगारिकता का रंग बोलों में गहरा है, पर वहां प्यार भी सहज है और वहां किसी को सताने के लिए होली नहीं खेली जाती। होली वस्तुतः वर्ष या संवत्सर का दाह है, उसकी चिता की भस्मी रमाकर नये वर्ष के अभिनन्दन की तैयारी है। इसमें समस्त ऐन्द्रिय भोग का रेचन है, पर इस भाव से कि वह सामाजिक मंगल हो अपने में भरने के लिए हो, इसीलिए होली, इसमें केवल स्त्री-पुरुष ही एक-दूसरे के साथ परिहास नहीं करते, श्रीराम कृष्ण और शिवशंकर भी साथ-साथ होली खेलते हैं और उनको रंग-रंग में सराबोर करने का भाव साथ-साथ रहता है, इसलिए जो भी गीत होते है, जो रंग से भिगोने के व्यापार होते हैं, वे अपने-आप निर्वैर्यक्तिक हो जाते हैं।

दीपावली या दीवाली या दीपों का त्योहार लक्ष्मी के पूजन का, काली के पूजन का त्योहार तो है ही, वस्तुतः वह त्योहार दीपों का त्योहार है। घर का कोन-कोना साफ हो जाये, लिप-पुत जाये, कोने-कोने से अपने हाथों जलाकर दीप एक छन्द के साथ रखा जाये, घर के बाहर मुंडेर से लेकर नीचे तक दीपपंक्तियां बिछा दी जायें, द्वार खोलकर श्रीदेवी के दर्शन देने की प्रतीक्षा की जाये, इन सबके पीछे, अभिप्राय एक है, अन्धकार से जूझना, मानवीय प्रयत्न के बल पर जूझना, बाहर और भीतर के मोह को ध्वस्त करना। यह पर्व विजयादशमी के बाद मनाया जाता है, आश्विन शुक्ल दशमी को राम की रावण पर विजय होती है, तपस्वी नर की प्रबल आसुरी शक्ति पर विजय होती है, ठीक उसके बीस दिन बाद राम के अयोध्या लौटने पर उनके राज्याभिषेक के उत्सव में घर-घर दीप जल उठते हैं। बंगाल में तो यह कालीपूजन का दिन है, क्योंकि काली अमंगल के सर्वनाश की देवता है।

जन्माष्टमी और रामनवमी, ये दो पर्व दो प्रमुख अवतारों के जन्मोत्सव के पर्व हैं। हिन्दू इन दिनों में जन्मदिन या वर्षगांठ नहीं मानता, केक नहीं काटता, वह यह अनुभव करता है कि भादों के अंधेरे पक्ष की अंधेरी आधी रात में श्रीकृष्णचन्द्र का आविर्भाव हो रहा है, उनके अवतरण की प्रतीक्षा करता है, चैत्र शुक्ल रामनवमी को ठीक दोपहर में श्रीराम जन्म ले रहे हैं, घर-घर अयोध्या हो रहा है। श्रीकृष्ण हिन्दू-हृदय चुराने के लिए वज्र अंधेरी रात में जन्म लेते हैं, श्रीराम के साथ चलने का अर्थ है, सत्य के लिए निर्वासन स्वीकार करना और उनके साथ वन की यात्रा करना। पर जीवन का आस्वाद इसी विध्वंसक प्यार में है, इसी वन-यात्रा में है। इन दोनों के पीछे हिन्दू चलकर आश्वस्त है कि ये दोनों तो कुछ करें न करें पर इनकी चैतन्य-शक्तियां श्री राधा और जानकी अवश्य चिन्ता करेंगी।

हिन्दू मन को खींचने वाले शिव और उनके परिवार के सदस्य दूसरे प्रकार का महत्त्व रखते हैं। हिन्दू कल्पना की समस्त उर्वरता लगी तो शिव का, पार्वती का, गणेश का और स्कन्द का आकार खड़ा हुआ। शिव के साथ अब अटपटापन, सब ज्ञान, सभी कला में, सभी सुख और सभीं सुखों का त्याग, ऐश्वर्य और भिखमंगापन, नित्य-योग और नित्य-भोग– से सभी चीजें जुड़ गई हैं। वे आशुतोष

हैं, ज़हर भी प्रेम से दो, प्रसन्न हो जाते हैं। पार्वती हिमालय की कन्या अपने तप से शिव को खरीदने वाली, शिव से भी बढ़कर भिखमंगों, भूतों-प्रेतों का जीवन-निर्वाह वही करती है, पर वे सौभाग्य की अधिदेवता है। हिन्दू नारी उनकी उपासना करती है कि बस घर का स्वामित्व मुझे ऐसा मिले जैसे गोरी को मिला, पति बौड़म बना रहे, बस अपने तप की सब कमाई मुझे सौंपकर निश्चिंत रहा करे और हां, एक क्षण को भी पार्श्व न छोड़े, लड़के ऐसे हों, एक तो महाशक्तिशाली, देवसेनापति, दूसरा बड़ा बुद्धिमान, दोनों को अनायास सम्मान प्राप्त होता रहे। हिन्दू होने का अर्थ है शिव का आराधक होना, क्योंकि शिव की आराधना से ही लोक सधता है, विभूतियां मिलती हैं, शिव की ही आराधना से मोक्ष सधता है, जीवन में विष मिलता है तो गले में रह जाता है, नीचे उतरता नहीं और अमृत में संगति की शिक्षा देते हैं। इसीलिए शिव, पार्वती, गणेश और स्कन्द से सम्बन्ध पर्वों में बड़ी जीवन्तता रहती है। महाशिवरात्रि नृत्यगीत की रात्रि होती है, गौरीव्रत का दिन हरतालिका या राजस्थान का गणगौर या दक्षिण में स्कन्द महोत्सव या महाराष्ट्र का गणेशोत्सव या जगद्धात्री पूजा के पर्व सौन्दर्य, सौभाग्य, उल्लास के पर्व होते हैं। हिन्दू लोक साहित्य शिव-पार्वती को घर-घर गांव-गांव घुमाता रहता है, वह अपने को इस परिवार का अंग समझता है, उसे भूत-प्रेतों का भय कैसे घेरेगा, उसका बीता और विस्तरणीय इतिहास उसके सिर पर कैसे सवार होगा, हां, जो उसके साथ चल रहा है, वह जीवनभाव चाहे श्रीकृष्ण के रूप में हो, श्रीराम के रूप में हो, शिव-पार्वती के रूप में हो, वह चल रहा है, गतिशील है और उसकी गति में गतिशील है, इसलिए हमेशा नया हो रहा है।

हिन्दू पर्व इसलिए सनातन जीवन-भाव के बार-बार उमड़ने के पर्व हैं।

तीर्थ और पर्व-दोनों ही मिलकर देश और काल को जगाने और भुलाने के लिए हैं। तीर्थयात्रा में आदमी देश को एक ओर पहचानता है, दूसरी ओर वह देश से मुक्त होता रहता है, क्योंकि देश की विविधता और देश के विस्तार, देश की सम्भावना और देश के इतिहास का स्मरण करते-करते यह अनुभव करने लगता है कि देश मुझमें आ गया है, और तब कहीं रहे उसके भीतर गंगा हिलोर लेने लगती है। इसी प्रकार पर्व मनाते-मनाते वह तिथियों की अलग कलाओं को निरखते-निरखते, ऋतुओं के मोड़ देखते-देखते, उत्सवों में अपने को रीता करते और भरते-भरते वह सावधिकाल की अनन्तता में रमने लगता है, उसके भीतर महाकाल और छिन्नमस्ता उसकी चेतना की ताल पर नाचने लगते हैं, वह स्वयं अपने अंहकार का मस्तक अपने हाथ पर रखकर छिन्नमस्ता बन जाता है, अपने जमाने का विष पीकर नीलकंठ बन जाता है। हिन्दू वर्गीकरण इतने बारीक ब्यौरे में जाता है, दिन भी २४ घंटों में नहीं ६० घटियों में विभक्त है और तिथि तारीख की तरह २४ घंटे की नहीं बल्कि घटती-बढ़ती ५२ से ६० के बीच घटियों, कुछ पलों, कुछ विपलों की होती है, उसका देश भी इतनी छोटी-छोटी इकाइयों का बना हुआ है, उसमें इतने देशाचार है, इतने ग्रामदेवता हैं, पर इसीलिए उसमें एकता के दर्शन की अपरिहार्य परिणति है, हिन्दू जीवन बहुविधता को नष्ट नहीं करता, उसको सार्थकता देता है, बहुविध प्रकारों को एकोन्मुख करके हिन्दू धर्म इसीलिए स्वयं सनातन तीर्थ है, सनातन पर्व है।

सन्दर्भ :

१. सर्वा नद्यः सरस्वत्यः सर्वे पुण्याः शिलोच्चयाः।

जाजले तीर्थमात्मैव मा स्म देशातिथिर्भव।। महाभारत, शान्ति पर्व, २६३/४१

२. आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहा शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पांडुपुत्र न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा।।

वामन पुराण, ४३.२५

३. चौदयित्री सुनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती।।
धर्मकृत्यों को प्रेरित करने वाली, सद्बुद्धि को चेताने वाली सरस्वती ने यज्ञ को धारण किया है।

ऋग्वेद १/३/११

४. अप्सु स्नाति साक्षादेव दीक्षातपसी अवरुंधे तीर्थे स्नाति।
जल में नहाता है, साक्षात् दीक्षा और तप से जुड़ता है, तीर्थ में नहाता है।

तैत्तिरीय संहिता, ६/१/१/१

५. हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु।।
यह सुनहले वर्ण वाले पवित्र जल देवता हमारे लिए कल्याणप्रद हों, जिनमें सूर्य पैदा हुआ, जिनमें अग्नि पैदा हुए, जो सुन्दर वर्णों से युक्त है, जो अग्नि को (यज्ञ को) अपने गर्भ में धारण करता है।

अथर्ववेद, १/३३/१

६. (१) ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत।

ऐतरेय ब्राह्मण, ८/१

(२) माध्यमाः सरवत्यां सत्रमास्त।

शांखायन ब्राह्मण, १२/३

७. शरीरस्य यथोद्देशाः शुचयः परिकीर्त्तिताः।
तथा पृथिव्या भागाश्च पुण्यानि सलिलानि च।।
परिग्रहाच्च साधूनां पृथिव्याश्चैव तेजसा।
अतीव पुण्यभागास्ते सलिलस्य च तेजसा।।

महाभारत, अनुशासनपर्व, १०८/१६-१८

८. यः स्वधर्मान् परित्यज्य तीर्थसेवा करोति हि।
न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च।।
ऋणानि त्रीण्यपाकुर्यात् कुर्वन् वा तीर्थसेवनम्...

कूर्म पुराण, २/४४/२०-२३

९. मुख्य तीर्थ :

कुल पर्वतः

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्य सप्तैते कुलपर्वताः।।
हिमालय नगाधिराज होने के कारण इन सातों में नहीं गिना गया है।

कूर्म पुराण, ९.४७

सात वन :

काम्यक वन, अदितिवन, व्यास वन, फलकी वन, सूर्यवन, मधुवन और पुण्यशीत वन।

सात नदियां :

(१) गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरिजलेस्मिन् सन्निधिं कुरु।

(२) गंगा-यमुना (कार्तिक में), नर्मदा (पौष में), देविका (मार्गशीर्ष में), सन्निहिता (माघ में), वरुणा (फाल्गुन में), सरस्वती (चैत्र में), चन्द्रभागा (वैशाख में), कौशिकी (ज्येष्ठ में), तापिका = तापी (आषाढ़ में), और गण्डकी - नारायणी (भाद्रपद में), सरयू (आश्विन में), गोदावरी (चन्द्रग्रहण में)।

वामन पुराण, ३४/३-५

सप्तपुरी : काशी, कांची माया (हरिद्वार), अयोध्या, द्वारिका, मथुरा, अवन्तिका, (उज्जैन)

सप्तक्षेत्र : कुरुक्षेत्र, हरिहरक्षेत्र (सोनपुर-बिहार), प्रभासक्षेत्र (सोमनाथ गुजरात), रेणुका क्षेत्र (मथुरा के पास), भृगुक्षेत्र (भड़ोच के पास, गुजरात), पुरुषोत्तमक्षेत्र (पुरी, उड़ीसा) और सूकरक्षेत्र (सोरों, उत्तर प्रदेश)।

द्वादश ज्योतिर्लिंग : विश्वनाथ (काशी), वैद्यनाथ (देवघर, बिहार), रामेश्वर (तमिलनाडु), मल्लिकार्जुन (श्रीशैल, आन्ध्र प्रदेश), घृष्णेश्वर (एलुमा के पास) भीमशंकर (महाराष्ट्र), त्र्यम्बकेश्वर (महाराष्ट्र, नासिक) ओंकारेश्वर, (मध्य प्रदेश), महाकाल (उज्जैन), सोमनाथ (गुजरात), केदारनाथ (उत्तराखण्ड)।

प्रमुख शक्तिपीठ : कामाक्षी (रांची), भ्रमराम्बा (केरल), कुमारी (कन्याकुमारी) अम्बाजी (गुजरात), महालक्ष्मी (कोल्हापुर), कालिका (उज्जैन), ललिता (अलोपीदेवी, प्रयाग), विन्ध्यवासिनी (विन्ध्याचल), विशालाक्षी (वाराणसी), मंगलावती (गया), त्रिपुरसुन्दरी (बंगाल), गुह्यकेश्वरी (नेपाल), कामाख्या (आसाम), शाकम्भरी (सहारनपुर के पास), ज्वालामुखी (कांगड़ा)।

चार धाम : बदरीनाथ, द्वारिका, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर।

स्रोत तीर्थ : गंगोतरी (गंगा), यमुनोत्तरी (यमुना), गोमुख (गंगा), मानसरोवर (सिन्धु और ब्रह्मपुत्र), मुक्तीश्वरनाथ (गंडकी), अमरकटक (शोणभद्र और नर्मदा), पंचवटी (गोदावरी)।

मुख्य सरोवर तीर्थ : पुष्कर (राजस्थान), कुरुक्षेत्र (ब्रह्मसरोवर), चक्रतीर्थ (नैमिषारण्य), ज्योतिसर (जहां गीता का उपदेश दिया गया), अमृतसर, मानसी गंगा (गोवर्धन)।

संगमतीर्थ, सागरतीर्थ : हरिहरक्षेत्र, महाबलीपुरम्, गंगासागर, पुरी, धनुष्कोटि, प्रयाग, भृगुकच्छ, कन्याकुमारी, गोकर्ण।

गुफातीर्थ : अमरनाथ (कश्मीर), वैष्णवदेवी (जम्मू के पास), व्यासगुफा (बदरीनाथ के पास)।

श्राद्धतीर्थ : पिशाचमोचनतीर्थ (काशी), प्रयाग, गया, ब्रह्मकाल (बदरीनाथ), पृथूदक (कुरुक्षेत्र के पास), भृगुकच्छ, रामेश्वरम्, प्रयास।

१०. **आनन्दकुमारस्वामी :** हिन्दुइज्म ऐंड बुद्धिज्म, पृ. २३-२४

दिव्य विभूति

विश्व के महानतम यायावर - कृष्णद्वैपायन व्यास

डॉ. कृष्णमोहन पाण्डेय

ज्ञान और विज्ञान के वैदुष्य की पराकाष्ठा का उदात्त प्रतिमान कृष्णद्वैपायन व्यास भारतीय इतिहास का एक ऐसा नाम है जिसका विश्व के किसी भी साहित्य में कोई पर्याय नहीं। व्यास की और्ध्विक गति जितनी उदात्त है, लौकिक गति उतनी ही विशाल है। मनुष्यों की आदिकाल से गतिमान समस्त सांस्कृतिक परम्परा का आमूलचूल विवरण प्रस्तुत करने वाला विश्व का महानतम यायावर अद्वितीय महाकवि कृष्णद्वैपायन व्यास सम्पूर्ण चराचर जगत् का आदिम ज्ञाता है। महर्षि व्यास अपने से पूर्वकालिक सम्पूर्ण भारतीय ऋषि परम्परा को अपने हाथ में रखे पिण्ड की तरह देखने वाले हैं। **इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्। भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम्।।** (महाभारत, आदि पर्व १.६३) जीवन के सर्वस्व अनुभवों का सार प्रस्तुत करते हुये जब वे महाभारत और पुराणों का व्याख्यान करते हैं तो उनके मुख से ऐसी यथार्थ वाणी निकलती है जो आने वाली अनन्त पीढ़ियों के लिए चुनौती ही रह गयी है– **धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तद्क्वचित्।** महाभारत की ये पंक्तियाँ व्यास के अपरिमित ज्ञान और अपार अनुभव का प्रत्याख्यान करती हैं। अपने विशालकाय ग्रन्थ के एक लाख श्लोकों में उन्होंने संसार की संस्कृतियों एवं अपसंस्कृतियों का जो सांगोपांग स्वरूप प्रस्तुत किया है वह युग युगान्तर तक अन्वेषणीय और अनुकरणीय है। कौरवों का असभ्य आचरण और पाण्डवों का सदाचार व्यास के ऐतिहासिक ज्ञान के तराजू के दो पक्ष हैं। यथार्थ रूप में कौरव और पाण्डव तो प्रतीक मात्र हैं। व्यास सम्पूर्ण सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को सर्वसुलभ बनाना चाहते हैं। तात्कालिक भारतीय समाज में व्याप्त व्यावहारिक बर्बरता, चोरी, बेइमानी, ईर्ष्या, हिंसा, पाप, स्त्रियों के प्रति दुर्भाव, कुरीतियों और दुष्प्रवृत्तियों पर कुठाराघात करने के कोई भी उपाय व्यास ने नहीं छोडे हैं। सच्चे अर्थों में व्यास ही भारतीय इतिहास में कलंकित असभ्यताओं का उच्छेदन करके सभ्यता के मार्ग का प्रस्फुटन करने वाले प्रथम पथ प्रदर्शक हैं। **यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्** के परम पोषक हैं।

व्यास के यायावर्य का मूल्यांकन मनुष्य की साधारण बुद्धि से अगम्य है। अष्टादश (मत्स्य, मार्कण्डेय, भविष्य, भागवत, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, वायु, वामन, विष्णु, वराह, अग्नि, नारद, पद्म, लिंग, गरुड, कूर्म, स्कन्द) पुराणों का वैशद्य, सृष्टि विद्या के रहस्य बोधन में सर्वविध आदिम सोपान हैं। महाभारत और पुराणों को मिलाकर लगभग ५ लाख श्लोकों में व्यास का प्रातिभ्य प्रदर्शन सर्वलोकातिशायी है। विश्व का कोना-कोना उनकी सूक्ष्मदृष्टि और प्रखर बुद्धि से अवलोकित है। सूर्य का प्रकाश जिस-जिस दिशा और देश में जाता है, उस-उस देश में व्यास की सरल गति है। अपने व्याख्यानों में देश काल और परिस्थितियों का जितना सूक्ष्म विवेचन वे करते हैं वही सूक्ष्म विवेचन

आधुनिक काल के लिए उपजीव्य बना हुआ है। पूरे विश्व का मानचित्र उनके काव्य का समन्वित विषय है। दुनिया भर की कुरीतियों, असभ्यताओं और सदाचार की परम्पराओं के सर्वविध स्रोतों का रहस्योद्घाटन करते हुये चिरकाल से अनुसन्धाताओं की जिज्ञासाओं का निरन्तर विराम व्यास की अपरिमित क्षमता है। वेदों के अप्रतिम भाष्यकार आचार्य सायण व्यासोक्त पुराणों को समस्त विद्याओं का भण्डार कहते हुए विद्या स्थान की उपाधि देते हैं।

न सा विद्या, न तज्ज्ञानं, न तच्छिल्पं न सा कला। न तत्तात्वं हि गहनं पुराणैर्यन्न गीयते ।।
तत्राप्यसम्भवत्वं यत्, परप्रत्ययबुद्धिभिः। आशङ्क्यते, तदेवात्र समाधाय निरुप्यते।।

इसी प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने चतुर्दश विद्याओं की गणना में पुराणों को सर्वप्रथम रखा है। यथा –

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।

व्यास की सार्वभौमिक दृष्टि से चराचर जगत् का कोई भी कोना अछूता नहीं है। उनके वाग्वैखरी में इतिहास, पुराण, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, कल्प, ज्योतिष, पितृविद्या, भूतविद्या, गणितविद्या, दैवविद्या, निधिविद्या, तर्कविद्या, स्थापत्यवेद, गान्धर्ववेद, नीतिशास्त्र, ब्रह्मविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, आयुर्वेद और गाथा शास्त्रादि अनेक लौकिक और पारलौकिक विषयों का सर्वांगीण विवेचन विद्यमान है। भारतीय मनीषा की औदात्य विचार धारा के अनुसार व्यासों की एक सुदीर्घ परम्परा है। अलग अलग काल में भिन्न-भिन्न व्यास अवतरित होते हैं ऐसी मान्यता है। कूर्म पुराण के अनुसार वर्तमान मन्वन्तर के प्रारम्भिक प्रथम द्वापर में महान विभु स्वायम्भुव मनु को व्यास माना गया है। प्रभु ब्रह्मा की आज्ञा से उन्होंने वेद का अनेक प्रकार से विभाजन किया। दूसरे द्वापर में प्रजापति वेदव्यास हुये। तीसरे में शुक्राचार्य व्यास हुये और चौथे में बृहस्पति व्यास हुये। पाँचवें में सूर्य व्यास हुये और छठें में मृत्यु को व्यास कहा गया है। इसी प्रकार सातवें में इन्द्र, आठवें में वसिष्ठ, नवें में सारस्वत, दसवें में त्रिधाम, ग्यारहवें में त्रिवृष, बारहवें में शततेजा, तेरहवें में धर्म, चौदहवें में तरक्षु, पन्द्रहवें में त्यारुणि, सोलहवें में धनंजय, सत्रहवें में कृतंजय, अट्ठारहवें में ऋतंजय, उन्नीसवें में भरद्वाज, बीसवें में गौतम, इक्कीसवें में राजश्रवा, बाइसवें में श्रेष्ठ शुष्मायण, तेईसवें में तृणविन्दु, चौबीसवें में वाल्मीकि, पच्चीसवें में शक्ति, छब्बीसवें में पराशर, सत्ताईसवें में महामुनि जातुकर्ण और अट्ठाईसवें द्वापर युग में पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास हुये। (कूर्म पुराण, पूर्व विभाग, अध्याय ५०, १ से १० श्लोक तक)। व्यास की अप्रतिम प्रतिभा उन्हें भगवदवतार के रूप में प्रस्तुत करती है। कूर्म पुराण का यह श्लोक सिद्ध करता है कि पराशर ऋषि को प्राप्त भगवान ईशान के कृपा प्रसाद से कृष्णद्वैपायन की प्राप्ति हुई थी –

आराध्य देवदेवेशमीशानं त्रिपुरान्तकम्। लेभे त्वप्रतिमं पुत्रां कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्।।

(पूर्व विभाग १८.२४)

व्यास का शाब्दिक अर्थ है **वेदान् विव्यास इति व्यासः**। जो वेदों का विभाजन करने वाला है वह व्यास है। व्यास का अवतरण समाज को सृष्टि का रहस्य बताने के लिए ही हुआ है। सर्व प्रथम वेदों का वैशिष्ट्य के अनुसार विभाजन कर लोक लोकान्तर में लोकायित करना व्यास का प्राथमिक अनुग्रह है।

पुनः वेदों का विस्तार और उसकी परम्परा का प्रचलन उनका कर्तव्य है। वेदों में वर्णित लौकिक और आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन व्यास की स्वाभाविक क्रिया है। इसीलिए व्यास ने कठिन और रहस्यात्मक विषयों को महाभारत और पुराणों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। भारतवर्ष का अनादि काल से चला आ रहा सम्पूर्ण इतिहास जो अनेक बार असभ्यता, बर्बरता और पाशविकता के मार्ग से गुजरते हुए सभ्यता, कुलीनता और मानवता के उन्नत शिखर तक पहुँचा है को व्यास ने अपने व्याख्यान में ऐसा समेटा है कि आने वाले युगों तक की पीढ़ियाँ उन्हीं के अनुसन्धान में अपना समय लगायेंगी।

सृष्टि के संविधान को मनुष्य की वैकासिक यात्रा में कब जोड़ा गया इसका उल्लेख करते हुये महर्षि व्यास जगत् को बताते हैं कि विवाह प्रथा सृष्टि में संस्कारों का आधान करती है। आरम्भिक काल में स्त्री पुरुष संयोग पशुवत् स्वेच्छा से होता था। कालान्तर में विवाह प्रथा प्रचलित हुई। महाभारत के आदि पर्व में इस प्रथा के प्रारम्भ की कथा कहते हुये वे बताते हैं कि **मर्यादियम् कृता तेन धर्म्या वै श्वेतकेतुना।** (आदि पर्व -१२२-१०-२०)। कथा का भाव इस प्रकार है कि उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु अपने पिता के पास बैठे थे कि उसी समय एक ब्राह्मण आया और उनकी माता का हाथ पकड़कर कहा 'चलो' 'हम लोग चलें'। श्वेतकेतु को बहुत क्रोध आया। तब पिता ने समझाया कि स्त्रियाँ गौ की तरह होती हैं उनमें स्वैराचार की ही परम्परा है। ऋषि पुत्र पिता के वाक्यों से सन्तुष्ट नहीं हुये, उन्हें ऐसा स्वैराचार अनुचित लगा। तत्क्षण क्रोधित होते हुये वे बोले 'आज से मैं यह नियम बनाता हूँ कि अब मनुष्य समाज में स्त्री पुरुष दोनों में से कोई भी यौन व्यापार में स्वच्छन्दाचरण को प्रश्रय नहीं देगा। मेरे इस नियम का उल्लंघन करने वाले को भ्रूण हत्या का पाप लगेगा।' गार्हस्थ्य धर्म की कर्तव्य निष्ठा इसी पंक्ति बन्धन से सुरक्षित हुई है। मनुष्यों में स्वेच्छाचार व्यास को नापसन्द है। इस प्रकार की पाशविक वृत्ति को व्यास आगे नहीं चलने देना चाहते हैं। सामान्य समाज को जागरुक करना उनकी विशेष पहल है। समाज की इस भ्रष्ट परम्परा का व्याख्यान करने में उन्हें कोई संकोच भी नहीं है। इसी कारण व्यास भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के सबसे बड़े आलोचक भी हैं। सांस्कृतिक मर्यादा को प्रतिस्थापित करना व्यास का महनीय प्रयास है।

व्यास के काल में भी चोरों और उचक्कों की कमी नहीं है। धन के लिए अधर्म करने वाले भी पर्याप्त हैं। व्यापार में ठगी, स्वार्थ में हत्या, बड़ों का अपमान, आदि अनेक सामाजिक बुराइयाँ भी समाज का अभिन्न अंग हैं। यह अलग बात है कि इन असामाजिक तत्त्वों के नियन्त्रण के लिए कठोर दण्ड संहिता भी है। (अग्निपुराण २२७ वाँ अध्याय) व्यास के स्वस्थ चिन्तन का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि वे अपनी दूर दृष्टि से अनन्त काल से चली आ रही सभ्य, असभ्य परम्पराओं को एक नई दिशा देते हुये सर्वत्र दिखाई देते हैं। सभ्यता, संस्कृति, संस्कार, परम्परा, इतिहास, भूगोल, खगोल, लोक, परलोक, पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक, पाताल, देवता, किन्नर, विद्याधर, अप्सरा, राक्षस, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, नदियां, समुद्र, पर्वत, पेड़, भूमि, उचित, अनुचित, धर्म, अधर्म, आश्रम, वर्ण, तीर्थ, कर्तव्य, अकर्तव्य, चर, अचर, शिल्प, कला, खाद्य, पेय, लेह्य, चोष्य, वस्त्र, आभूषण, शिक्षण, आर्थिक,

सामाजिक, व्यावहारिक, पारमार्थिक क्या कुछ इस ब्रह्माण्ड में हो सकता है, उन सबका सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत करके व्यास ने अपने आप को भगवान ही सिद्ध कर दिया है। **वेदैचतुर्भिः संयुक्तां व्यासस्याद्भुतकर्मणः।।** (आदिपर्व. १.२१) पुराणों के लक्षण के अनुसार **सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्।** (शुक्रनीति-४.६३) ऐसा लगता है कि प्रकृति का सर्वस्व उनकी लेखनी का प्रतिपाद्य है। सर्ग का तात्पर्य है सूक्ष्म तत्वों की रचना तथा उनका विकास, अपक्षय और तिरोभाव। प्रतिसर्ग का अर्थ है स्थूल जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और उसका संहार। वंश का अर्थ है ऐतिहासिक व्यक्तियों की वंशपरम्परा। मन्वन्तर का अर्थ है अमुक घटना या अमुक व्यक्ति का समय ज्ञात करने के लिए पौराणिक पद्धति का मन्वात्मक विधान। वंशानुचरित का अर्थ है धर्म संकट के समय न्याय पथ निर्धारण करने में मनुष्य समाज के काम में आने वाले अनेक व्यक्तियों के अनुकरणीय जीवन चरित। ये पांच तत्व मुख्य रूप से पुराणों के वर्ण्य विषय हैं। यह श्लोक ब्रह्माण्ड पुराण, वायु पुराण, मत्स्य पुराण, कूर्म पुराण, शिवपुराण, गरुड, भविष्य, बाराह आदि पुराणों में भी यथावत् लिखा है।

व्यास का भौतिक जगत् का ज्ञान जितना विशालतम है, आध्यात्मिक जगत् का ज्ञान उतना ही सूक्ष्मतम है। दृश्य जगत् किन तत्वों से बना है तथा उन तत्वों का पौर्वापर्य क्या है यह व्यास के बाद आज तक कोई नहीं बता सका। सृष्टि की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इन प्रश्नों का उत्तर पुराण ही बताते हैं, इनके अतिरिक्त संसार में कोई ग्रन्थ नहीं। सृष्टि की उत्पत्ति का इतिहास बड़े रोचक ढंग से पुराणों में वर्णित है। आरम्भ में आधुनिक विज्ञानवादी सृष्टि को पांच छः हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई मानते थे, फिर केलट्विन के मत को लेकर प्रो. बेकर ने छः करोड़ वर्ष सृष्टि की उत्पत्ति बताई। इंग्लैण्ड के विद्वान डॉ. विलियम, मि. एलनसृजि, डॉ. स्मिथ एडवर्ड आदि पृथ्वी की उष्णता की जांच कर पृथ्वी की आयु दस करोड़ तक बताते हैं। फिर आगे अन्य वैज्ञानिकों ने यूरेनियम, रेडियम, हीलियम, वोलोनियम आदि अनेक धातुओं के परीक्षणों से पृथ्वी की आयु बीस करोड़ से पच्चीस करोड़ वर्ष पूर्व मानी हैं। खींचतान कर कुछ वैज्ञानिक सृष्टि को 30 करोड़ तक ले जाते हैं। इस सृष्टि के समय निर्धारण में कहीं भी वैज्ञानिकों में साम्य नहीं है किन्तु व्यास का भूगोल और खगोल ज्ञान देखिये। विष्णु पुराण में स्पष्ट लिखते हैं कि –

काष्ठा पंचदशाख्याता निमेषा मुनिसत्तम। काष्ठात्रिंशत्कला त्रिंशत्कलामौहूर्तिकौ विधिः।। ८
तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्। अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः।। ९
तैः षड्भिरयनं वर्ष द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे। अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम्।। १०
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे। दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम्।। ११
प्रोच्यते तत्सहस्रं च ब्रह्मणो दिवसं मुने !। ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् मनवस्तु चतुर्दश।। १५-१६
ब्राह्मो नैमित्तिको नाम तस्यान्ते प्रतिसंचरः।। २२ (विष्णु पुराण प्रथमांश अध्याय 3)

राष्ट्रभाषा में व्यास का भावार्थ इस प्रकार है - आँख की पलक गिरने में जितना समय लगता है उसे निमेष कहते हैं, १५ निमेष की एक काष्ठा, ३० काष्ठा की एक कला, ३० कला की एक घड़ी, दो

घड़ी का एक मुहूर्त, ३० मुहूर्त का एक अहोरात्र (दिन और रात) होता है। ३० अहोरात्र का दो पक्ष वाला एक महीना है, छः महीने का एक अयन तथा दक्षिण और उत्तर दो अयनों का एक मानव वर्ष होता है। एक मानव वर्ष देवताओं का एक दिन है। इस प्रकार दिव्य बारह हजार वर्षों की एक चतुर्युगी होती है। एक हजार चतुर्युगी का ब्रह्मा का एक दिन होता है, जिसमें १४ मनु व्यतीत होते हैं। ब्रह्मा का एक दिन समाप्त हो जाने पर प्रलय होता है, वह ब्रह्मा की रात्रि है, उसका समय भी दिन के समान है। इस प्रकार १०० दिव्य वर्ष ब्रह्मा की आयु है। सनातनी परम्परा में ब्राह्मणों द्वारा पुराणोक्त विधि से किये जाने वाले संकल्प के आधार पर ब्रह्मा की आयु ५० वर्ष बीतने के बाद दूसरे परार्ध में श्वेत वाराह नामक कल्प में वैवस्वत नामक सातवें मनु के अन्तर में अठाइसवें कलियुग का प्रथम चरण ही चल रहा है। इन सभी व्यतीत हुये कालों की गणना करें तो गत छः मनुवों के १,८४,०३२०,००० वर्ष तथा इनकी सात सन्धियों के वर्ष १,२०,९६००० और सातवें मनु की गत २७ चतुर्युगी के ११,६६,४०,००० वर्ष तथा गम्यमान अट्ठाइसवीं चतुर्युगी के भुक्त वर्ष ३८,९३,११६ हैं। कुल मिलाकर यह संख्या १,९७,२९,४९,११६ वर्ष होते हैं। इतना समय कल्पाब्द के अनुसार व्यतीत हो चुका है। वर्तमान में वैज्ञानिको ने सिर्फ ७९९७ मील ही पृथ्वी का परिमाण निश्चित किया है जो व्यास के अनुसार १ हजार योजन ही है। विज्ञान धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है, शीघ्र ही व्यास के निकट पहुंचेगे ऐसी आशा है। इस आदिम रहस्य को स्पष्ट रूप से बताने के बाद व्यास ने पृथ्वी के वर्तमान स्वरूप का अस्तित्व भी कब से है इसका भी स्पष्ट उल्लेख किया है। पृथ्वी पर मानव सबसे पहले कहाँ आये उसका सन्दर्भ भी दर्शनीय है।

स्रष्टा की सृष्टि में वेद आदिम ग्रन्थ हैं। वेदों में सृष्टि का क्रम भी बताया गया है। **यथा**– **सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः। पुरुष एवेदं सर्वम्। यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः। सामानि जज्ञिरे। तस्मादश्वा आजयन्त ये के चोभयादतः। ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्। चन्द्रमा मनसो जातः सूर्यो चक्षो अजायत।** इत्यादि (यजुर्वेद)। परमात्मा ने विराट रूप में स्वयं को उत्पन्न कर यज्ञ किया। यह यज्ञ कहाँ हुआ इसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण (१४-१/१/२) में है कि **तस्मादाहुः कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनम्।** ऐसा ही एक उल्लेख ताण्ड्य ब्राह्मण में भी है कि– **एतावती वाव प्रजापतेर्वेदिर्यावत्कुरुक्षेत्रम्** (२५/१३/३)। तात्पर्य यह है कि आदि सृष्टि कुरुक्षेत्र में ही हुई। कुरुक्षेत्र को देवताओं का देवयजन कहते हैं। कालान्तर में कुरुक्षेत्र के निकटवर्ती क्षेत्र को ब्रह्मावर्त नाम से जाना गया है जिसका उल्लेख मनु करते हैं –

कुरुक्षेत्रां च मत्स्याश्च पांचालाः शूरसैनिकाः। एष ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः। (२.१८)

यही कुरुक्षेत्र मनुष्यों के आदिम क्षेत्र हैं जहाँ सदाचार का विकास हुआ है। संसार को इन्होंने ही सभ्यता सिखाई है –

तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यत्रमागतः। वर्णानां सान्तरालानां स सदाचारः उच्चते।। (२.१९)

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।। (२.२०)

मनुष्यों के आदिम मनु भी इसी ब्रह्मावर्त में निवास करते हैं। महर्षि व्यास भागवत् पुराण में

लिखते हैं कि **ब्रह्मावर्तं योऽधिवसंशास्ति सप्तार्णवां महीम्।** (३.२१.२५) अर्थात् सात समुद्रों से घिरी पृथ्वी का इसी ब्रह्मावर्त में रहते हुये मनु शासन करते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति का आदिम रहस्य व्यास ही बताते हैं। उनके अनुसार सृष्टि नवधा होती है। **प्राकृताश्च त्रये पूर्वे सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्वकाः। बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते मुख्याद्याः पंचवैकृताः।** (शिवपुराण १.१२.१८) अर्थात् प्राकृत सर्ग ३ (ब्रह्मसर्ग, भूतसर्ग, वैकारिकसर्ग) हैं, वैकृत सर्ग ५ (मुख्य सर्ग, तिर्यक् सर्ग, देव सर्ग, मानुष सर्ग, अनुग्रह सर्ग) हैं और प्राकृत वैकृत एक (कौमार सर्ग) है। इनका विस्तार से विवरण विष्णुपुराण (१.५) में है।

भूमण्डल की परिभाषा बताते हुये श्रीमद् भागवतपुराण में व्यास कहते हैं कि **भूमण्डलयामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैः चन्द्रमा वा सह दृश्यते।** (५/१६/१)। अर्थात् सूर्य जितनी दूर तक ताप करता है और जिस स्थान में तारा गणों सहित चन्द्रमा दिखता है उतने विस्तृत स्थान को भूमण्डल कहते हैं। व्यास सप्त द्वीपों के भ्रमण कर्ता हैं। उनके अनुसार जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, कौंच, शाक और पुष्कर नाम के सप्त द्वीप हैं। इसी प्रकार सप्त समुद्रों का भी ज्ञान देते हैं – लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध, स्वादोदक (स्वादु जल)। व्यास का यह कथन वेदों के प्रमाण से अनुप्राणित है–

घृतहस्त्रा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेणपूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धरा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमानाः।। (अथर्ववेद ४.३४.६)

भूमण्डल का स्पष्ट परिमाण व्यास को ज्ञात है। देवी भागवत में वे लिखते हैं कि **अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावा भूम्योर्यदन्तरम्। सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पंचविंशतिः।** (देवी भागवत्-८/१४/१६-१७) ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण परिमाप को बताने वाले इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि सूर्य से पच्चीस करोड़ योजन नीचे और सूर्य से पच्चीस करोड़ योजन ऊपर इसी तरह चारों ओर विस्तृत गोल का नाम ब्रह्माण्ड है। व्यास ने इसी गोले के दो विभाग कर के पचास करोड़ योजन के भूगोल के नाम से और उतने ही परिमाण वाले दूसरे गोलार्ध को खगोल के नाम से अभिहित किया है। इस प्रकार भूमण्डल ५० करोड़ योजन का है। **पंचाशत कोटि विस्तीर्णा सशैलवनकानना।** (विद्येश्वर संहिता १२.२)

पृथ्वी मण्डल का ज्ञान व्यास की यायावरी प्रकृति के कारण सहज दिखता है किन्तु खगोल विद्या का विवरण व्यास को अप्रतिम कोटि में स्थापित करता है। जिसमें उन्होंने सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह, राहु, केतु आदि उपग्रह, माया, राशि चक्र, आकाश गंगा, धूमकेतु, उल्कापिण्ड, दिग्दाहक पिण्ड, ध्रुव आदि सर्वविध आकाशाचारी अण्ड और पिण्ड का केवल वर्णन ही नहीं अपितु लोक में लोकायित करने के लिए उनकी उत्पत्ति परिवर्तन, गति, विगति आदि रहस्यों का भी सांगोपांग विवेचन किया है। प्रत्येक ग्रह उपग्रह का परिमाण, पृथ्वी की दूरी, कितने समय में किस मार्ग से घूमता है, इत्यादि विस्तृत विवेचन है। जिस प्रकार भूमण्डल की सीमा ५० करोड़ योजन है उसी प्रकार ब्रह्माण्ड के दूसरे भाग खगोल का परिमाण भी ५० करोड़ योजन ही है। भागवत् पुराण में व्यास ने कहा है कि –

एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशान्ति। यथा हि द्विदमयोर्निष्पावादीनाम्। (५.२१.२)

सृष्टि के संसरण का व्याख्यान करते हुये वे भागवत में कहते हैं कि जब ब्रह्मा ने कर्दम ऋषि

को आदेश दिया कि प्रजा उत्पन्न करो, तब वे सरस्वती नदी के तट पर दस सहस्र वर्ष तक तप करते रहे पुनः सृष्टि की – **प्रजाः सृजेति भगवान्कर्दमो ब्रह्मणोदितः। सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश।।** (३.२१.६)

इस धरा का पृथ्वी नाम कैसे पड़ा इसका रहस्य बताते हुये व्यास कहते हैं कि महान शक्ति सम्पन्न वेनपुत्र पृथु ने धनुष की नोक से पर्वतों के शिखर विदीर्ण कर इस धरा को समतल किया। असभ्यता के विशाल साम्राज्य को सभ्यता का पाठ पढ़ाना शुरु किया। मनुष्यों में संवेदना के स्वर का आधान किया। प्रजाओं के अन्न दाता प्रजापालक पृथु ने सामान्य जन के लिए तरह-तरह के आवास बनाये, ग्राम, नगर, पुर, अनेक प्रकार के दुर्ग, तालाब, छावनी, खेत, खलिहान, क्यारी, बगीचे, छोटे क्षेत्र, बड़े क्षेत्र आदि अनेक प्रकार से रहने योग्य पृथ्वी बनायी। पृथु से पूर्व इस धरा पर कुछ भी व्यवस्थित रूप न था। पृथु के धरा पर इस उपकार के कारण ही धरा का नाम पृथ्वी पड़ा। यह वर्णन भागवत पुराण के चतुर्थ स्कन्ध में है।

पृथ्वी का विस्तार व्यास की दृष्टि में आमूलचूल समाया हुआ है। महाभारत के आदि में ही जब वे कहते हैं कि **धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।।** (म.भा. १/६२/५३) मनुष्य जीवन के चार ही पुरुषार्थ हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अर्थात् महाभारत में मैंने जो कह दिया वही आदि और अन्त है, पूर्व और पश्चिम है। व्यास का भूत ज्ञान अद्वितीय है। उन्होनें अपने काल से पूर्ववर्ती मान्धाता, इक्ष्वाकु, ययाति, वेन, पृथु, नहुष, पुरु, कुरु आदि अनेक सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी राजाओं का चरित प्रस्तुत किया है। ये राजा भारत के विविध भूखण्डों पर शासन करते रहे हैं। राजाओं का चरित और तात्कालिक सामाजिक जीवन का सांगोपांग विवेचन उनकी यायावरी वृत्ति का परिचय है। पतिव्रता नारियों की कहानी, दान, पुण्य, स्वर्ग, नरक की प्राप्ति के विविध विधान, जीव के शरीर की स्थिति, जन्म, मृत्यु, लोक शिक्षण आदि विशेष विषयों का विशद विवेचन है। इसीप्रकार पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड में सृष्टिवर्णन के क्रम में देव, असुर, मनुष्य आदि की उत्पत्ति, समुद्रमंथन, दक्षयज्ञविनाश तथा मरुतों की उत्पत्ति का विस्तारपूर्वक विवेचन है। व्यास का इतिहास ज्ञान अद्भुत है। पृथु, इला, पूरुर्वा, स्यमन्तक इत्यादि के आख्यान, ब्रह्मा का यज्ञ, पुष्कर तीर्थ का चतुर्दिक् माहात्म्य, शिव दूती और क्षेमन्करी का आख्यान, कुमार की उत्पत्ति, तारकवध, अनेक देवासुर संग्राम, विविध व्रत, दान, तप, पूजा आदि का विवेचन व्यास को सार्वभौमिक बनाता है। विविध क्षेत्रों में होने वाले लघु वा दीर्घ महोत्सवों की चर्चा करके व्यास आगामी काल के लिए पथ प्रदर्शन करते हुए चलते हैं। भारतवर्ष का सीमांकन भी व्यास ही करते हैं। वे कहते हैं कि समुद्र से उत्तर तथा हिमालय से दक्षिण की ओर जो ९ सहस्र योजन विस्तृत भूमि है वह भारत है। **उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। वर्ष तद्भारतं नाम नवसाहस्रविस्तृतम्।।** (अग्नि पुराण ११८.१)।

तीर्थयात्रा संस्कृतियों के समागम और सामाजिक समरसता का महान प्रकल्प है। अनेक अपसंस्कृतियाँ तीर्थयात्राओं के बाद विलुप्त हो जाती हैं। भारत में तीर्थों का विशेष महत्व प्रतिपादित करने में व्यास ही अग्रणी हैं। प्राचीन काल से अद्यावधि तीर्थ यात्रा अनेक संस्कृतियों को समझने में

सहायक रही हैं। व्यास को इस सामाजिक रहस्य का पता था इसीलिए भारत के भिन्न-२ स्थलों में स्थापित विविध तीर्थों की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं, जिससे सांस्कृतिक गतिविधियाँ सर्वत्र फैलती रहें। अनेक जातियों तथा सम्प्रदायों के अनुयायी लोक धार्मिक भावना से अनुप्राणित होकर तीर्थ स्थलों पर जाते हैं। जहाँ पारस्परिक भेद-भाव की दृष्टि समाप्त हो जाती है और राष्ट्रीय एकता की प्रतिष्ठा होती है। **संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्** का भाव जागृत होता है। तीर्थाटन व्यास की एक अद्‌भुत योजना है। अखण्ड भारत में वे तीर्थों का विशेष महत्व प्रतिपादित करते हुए उनकी बृहद शृंखला प्रस्तुत करते हैं। पुष्कर सर्वोत्तम तीर्थ है, वहीं जम्बूतीर्थ भी है। **पुष्करं परमं तीर्थं सान्निध्यं हि त्रिसन्ध्यकम्। दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां विप्र पुष्करे।।** (अग्निपुराण १०९.०५)। पुष्कर में अनेक आश्रम और तीर्थ हैं यथा- तण्डुलिकाश्रम, कण्वाश्रम, कोटितीर्थ, नर्मदातीर्थ, अर्बुदतीर्थ, चर्मण्वती, सिन्धु, सोमनाथ, प्रभास, सरस्वती और समुद्र का संगम, सागरतीर्थ पिण्डारक, द्वारका सकलसिद्धिदायिनी, गोमती, भूमितीर्थ, ब्रह्मतुंग, पंचनदतीर्थ, भीमतीर्थ, गिरीन्द्रतीर्थ, पापनाशिनीदेविका, पुण्यविनाशनतीर्थ, नागोद्‌भेदतीर्थ, कुमारकोटितीर्थ आदि। (अग्निपुराण १०९ वाँ अध्याय) व्यास के अनुसार भारत तीर्थों का ही देश है। चारों दिशाओं में तीर्थ हैं। धर्मतीर्थ, सुवर्णतीर्थ, परमोत्तम गंगाद्वार (हरिद्वार), कनखलतीर्थ, पवित्र भद्रकर्णसरोवर, गंगासरस्वतीसंगम, ब्रह्मावर्त, आघार्दन, भृगुतुंग, कुब्जाभ्र, गंगोद्‌भेद, अघान्तकतीर्थ, वाराणसीतीर्थ, अविमुक्ततीर्थ कपालमोचनतीर्थ तीर्थराजप्रयाग, गोमतीगंगासंगम, राजगृहतीर्थ, पापनाशकतीर्थ, शालिग्रामतीर्थ, वटेशतीर्थ, वामनतीर्थ, उत्तमकलिकासंगतीर्थ, लौहित्यतीर्थ, करतोयातीर्थ, शोण, ऋषभतीर्थ, श्रीपर्वत, कोल्लगिरि, सह्यपर्वत, मलयगिरि, गोदावरी, तुंगभद्रा, कावेरी, वरदा नदी, तापी, पयोष्णी, रेवा, दण्डकारण्य, कालंजर, मुंजवटतीर्थ, सूर्पारक, मन्दाकिनी, चित्रकूट, शृंगवेरपुर, अवन्तिकानगरी, अयोध्या, नैमिषारण्य आदि अनेकानेक तीर्थ भारत की संस्कृतियों को अनन्त काल से एकता के सूत्र में बांधे हुए हैं। तीर्थयात्रा आश्रमव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है। इससे सामाजिक विकास के साथ आध्यात्मिक व्यक्तित्व का निर्माण भी होता है। भारतीय मनीषा सर्वदा यह उद्‌घोष करती रही है कि मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने के लिए उसकी आन्तर और बाह्य शुचिता अत्यावश्यक है। तीर्थ पापों एवं दुष्प्रवृत्तियों से मुक्ति की मानसिकता को जन्म देते हैं।

कृष्णद्वैपायनव्यास का भारत चतुर्विध पुरुषार्थों का पालक देश है। पूर्ववर्ती असाधारण व्यक्तित्वों की बहु आयामी प्रतिभा का विस्तार, आचार-विचार और क्रिया-कलाप, तात्कालिक समाज के यथार्थ स्वरूप का उद्‌भावन व्यास की सहज प्रक्रिया है। प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था का मूल आधार वर्णाश्रम धर्म ही था। इस व्यवस्था के द्वारा भारतीय संस्कृति में भौतिकता और आध्यात्मिकता को अद्‌भुत ढंग से समन्वित किया गया है। भारतीय उदात्त चरित मनीषी पारमार्थिक और व्यावहारिक अन्तर को सदैव रेखांकित करते रहे हैं। पारमार्थिक सुख की सर्वोत्कृष्टता और नित्यता में दृढ़ आस्था रखते हुए भी वे सांसारिक सुख और कल्याण की उपेक्षा नहीं करते। समाज के संतुलित संचालन के लिए चतुर्वर्ण की उत्पत्ति स्रष्टा की प्रकृति है। **चातुवर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।** (गीता ४.१३)।

चतुर्वर्ण सृष्टि की उत्पत्ति का पौराणिक सिद्धान्त वेदों का अनुगमन है। अन्तर मात्र इतना है कि पुराण में विराट पुरुष के स्थान पर ब्रह्मा की कल्पना की गई है तथा चार वर्णों के ये चतुर्विध विभाजन यज्ञ कर्म के संपादन हेतु किए गए हैं। जैसा कि पद्मपुराण में कहा गया है– **यज्ञनिष्पत्ये ब्रह्मा सर्वमेतद् चकार ह। चातुर्वर्ण्य महाभाग यज्ञसाधनमुत्तमम् ।।**

भूमण्डल का विस्तार कितना विशाल है उसका विवरण जानकर हमें आज भी सिर्फ आश्चर्य ही होता है। पृथ्वी का नाप-तोल, व्यास, परिधि, क्षेत्रफल और गुरुत्वाकर्षण की सीमा, पृथ्वी के समस्त पर्वतों की स्थिति, विस्तार, उनकी चोटियों की ऊँचाई, पृथ्वी के गर्भ की गहराई, पृथ्वी पर प्राप्त धातुओं, रत्नों का ब्यौरा, नदियों, सरोवरों, महा-आरण्यों, वनों, उपवनों का सर्वांगपूर्ण वर्णन आज तक के कवियों में केवल कृष्ण द्वैपायन व्यास ही कर सके हैं। पृथ्वी के सप्तद्वीपों का ज्ञान सर्वप्रथम व्यास ही हमें देते हैं। वे द्वीप विष्णु पुराण में इस प्रकार कहे गये हैं– जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप (विष्णुपुराण २.४)। व्यास पर्वतों की गहराई और ऊँचाई के पैमाने से परिचित हैं। मेरु पर्वत ८४ योजन ऊँचा है और १६ हजार योजन पृथ्वी के नीचे है। १६ हजार योजन उसका फैलाव है। (लिंग पुराण ४८.२०) उसी पर्वत पर देवताओं के अनेक महल हैं। सप्तद्वीपा पृथ्वी सभी सात समुद्रों के साथ ५० करोड योजन वाली है। **पंचाशतकोटिविस्तीर्णा ससमुद्रा धरा स्मृता।।** (लिंग पुराण ४६.२)

पृथ्वी के आलम्बन स्वरूप चारों ओर फैले हुये पर्वतों का विवरण देते हुए वायुपुराण में व्यास कहते हैं कि पूर्व दिशा में मन्दर पर्वत है, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में विपुल तथा उत्तर में सुपार्श्व है। इसी प्रकार मेरु के चारों ओर नील, वेत, शृंगी, जठर, देवकूट, निषध, हेमकूट, हिमवान, माल्यवान आदि पर्वतों का स्थान एक दूसरे से दूरी, दिशा, रंग और महत्व प्रतिपादित किया है। (वायु पुराण १.३५. ११,१६), (अग्नि पुराण १०८.१२.१२) (कूर्म पुराण ४५.१५.१६)। व्यास की यायावरी वृत्ति उन्हें एक एक छोटे छोटे पहाडों तक ले जाती है, उन छोटे छोटे पर्वतों के नाम सुनकर आज भी हमें हैरानी ही होती है। जैसे- मानस झील के दक्षिण में शैल, विशिर शिखर, एकशृंग, महाशूल, गजशैल, पिशाचक, पंचशैल, कैलास, हिमवत आदि पर्वत हैं। पश्चिम में शितोदझील से पश्चिम में सुरप, महाबल, कुमद, मधुमान, अंजन, मुकुट, कृष्ण, पंण्डुर, सहस्रशिखर, पारिजात, और श्रीशृंग हैं। इसी प्रकार महाभद्र झील के उत्तर में शंखकूट, महाशैल, वृषभ, हंसपर्वत, नाग, कपिल, इन्दंशैल, सानुमान, नील, कंटक, शृंग, शतशृंग, पुष्पकोश, प्रशैल, विरज, वराह, मयूर और जारुचि पर्वत हैं। व्यास की यायावरी वृत्ति जब उन्हें शकद्वीप ले जाती है तो वे बताते हैं कि वहाँ सात नदियाँ हैं- सुकुमारी, कुमारी, नन्दा, शिविका, इक्षु, वेणुका, और सुकृता। वहाँ चार प्रकार की जातियाँ निवास करती हैं। कुछ सभ्य हैं कुछ असभ्य। तत्र पुण्या जनपदाश्चतुर्वर्णसमन्विताः। मगाश्च मगगाश्चैव गानगा मन्दगास्तथा। (भविष्य पुराण १.१३६)। ऐसे ही एशिया की सप्त नदियों का विवरण व्यास गंगा की सप्त धारा के रूप में मत्स्य पुराण (१२१.४२) एवं वायु पुराण (४७.३७-५१) में दिया है। प्लक्ष द्वीप के विषय में बताते हैं कि वहाँ भी सात बडे पर्वत हैं। यथा- गोमेदक, चान्द्र, तारक, दुंदुभि, सोमक, सुमनह, वैभ्राज। शाल्मलि द्वीप का विवरण देते हुए कहते

हैं कि वहाँ भी कुमुद, उत्तम, बलाहक, द्रोण, कंक, महिष, और ककुद्मान नामक सात पर्वत हैं। कुश द्वीप में सात उपद्वीप हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं– विद्रुम, हेमपर्वत, द्युतिमान, पुष्पित, कुशेशय, हरिगिरि और मंदर पर्वत। इसी प्रकार क्रौंचद्वीप की महिमा भी बताते हैं। इन सब का विस्तार पूर्वक विवेचन लिंग पुराण के ५२ वें अध्याय में है।

पृथ्वी की भौगोलिक यात्रा के साथ व्यास उर्ध्व लोक और पाताल लोकगामी हैं। उनका और्ध्विक ज्ञान भी अतुलित है। उर्ध्वलोकों का विवरण देते हुए कहते हैं कि सत्य, तपः, जनः, महः, स्वः, भुवः, भू ये सात उर्ध्वलोक हैं। इनमें सर्वोपरि सूर्य मण्डल की दूरी पृथ्वी तल से एक सौ हजार योजन है। उसके ऊपर सूर्य का रथ सोलह हजार योजन है। मेरु पृथ्वी तल से ८४ हजार योजन है। यह लोक ध्रुव लोक से एक करोड़ योजन ऊपर है। जन लोक महः लोक से २ करोड़ योजन है। तपो लोक जन लोक से चार करोड़ योजन ऊपर है। उससे भी छः करोड़ योजन ऊपर ब्रह्म लोक है। (लिंग पुराण का अध्याय ५३) पृथ्वी तल से नीचे के लोकों का विवरण देते हुए कहते हैं कि अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल, पाताल ये अधोलोक हैं। इन सबका विस्तार पूर्वक विवेचन विष्णु, वायु एवं भागवत पुराणों में है। पाताल आदि का वर्णन कल्पना प्रसूत नहीं अपितु अनुभवाश्रित है। पाताल आदि का जो लक्षण व्यास बताते हैं वह वर्तमान युग में भी द्रष्टव्य है। व्यास के पाताल विषयक सांकेतिक व्याख्यान को आधार बनाकर बलदेव उपाध्याय ने अपने पुराण विमर्श नामक ग्रन्थ में विस्तार से शोधपरक विवेचन प्रस्तुत किया है।

प्राचीन विज्ञान की झलक मात्र से आधुनिक विज्ञान चमत्कृत हो उठता है। जैसे - अश्वशास्त्र (इसके अन्तर्गत अश्वों के सामान्य परिचय, उनको चलाने के प्रकार रोग, उपचार आदि का विस्तृत विवेचन है) (सभा पर्व ५.१०६), आयुर्वेद (गरुड़ पुराण अध्याय १४६ से २०२ तक) रत्न परीक्षा (गरुड़ पुराण अध्याय ६८ से ८० तक) वास्तुविद्या (मत्स्य पुराण अध्याय २५२ से २७० तक एवं अग्नि पुराण में भी), सामुद्रिक शास्त्र (अग्निपुराण अध्याय २४३ से २४५ तक) धनुर्विद्या (अग्निपुराण अध्याय २४६ से २५२ तक) अनुलेपनविद्या (मार्कण्डेय पुराण अध्याय ६१ श्लोक ८ से २० तक) स्वेच्छारूपधारिणीविद्या (मार्कण्डेयपुराण अध्याय २) अस्त्रग्रामहृदयविद्या (मार्कण्डेयपुराण अध्याय ६३) सर्वभूतरुतविद्या (मार्कण्डेयपुराण अध्याय ६४ एवं मत्स्यपुराण अध्याय २०) पद्मिनीविद्या (मार्कण्डेयपुराण अध्याय ६४) रक्षोघ्नविद्या (मार्कण्डेयपुराण अध्याय ७०) जालन्धरी विद्या (पद्मपुराण पाताल खण्ड अध्याय ३७) गोपालविद्या (पद्मपुराण पाताल खण्ड अध्याय ४१) पराबाला विद्या (पद्मपुराण पाताल खण्ड अध्याय ४३) पुरुषप्रमोहिनीविद्या (पद्मपुराण भूमिखण्ड अध्याय ३४) उल्लापन विधानविद्या (विष्णु पुराण ५.२०.६) देवहूतिविद्या (भागवत्पुराण ६.२४.३२) युवकरणविद्या (भागवत्पुराण ६.२२.११) वज्रवाहनिकाविद्या (लिंगपुराण अध्याय ५१) सिंहविद्या (अग्निपुराण ४३.१३) नरसिंहविद्या (अग्नि पुराण ६३.०३) गान्धारीविद्या (अग्निपुराण १२४.१२) मोहिनीविद्या एवं जृम्भणी विद्या (अग्नि पुराण ३२३.४-२०) अन्तर्धान विद्या (भागवत्पुराण ४.१५.१५) वैष्णवीविद्या (भागवत्पुराण ६.८) त्रैलोक्यविजयविद्या (ब्रह्मवैवर्तपुराण गणेशखण्ड ३०.१-३२) आदि अनेक रहस्यमयी और विचित्र विद्यायें व्यास की लेखनी के चमत्कार हैं, जिन पर अब

भी गम्भीर अनुसंधान की अपेक्षा है।

व्यास का भविष्य चिन्तन भी अद्‌भुत है। हम जिस युग में जी रहे हैं उस कलियुग की लोकवृत्ति का दिग्दर्शन व्यास ने हजारों वर्ष पूर्व ही कर दिया था। लिंग पुराण के चालीसवें अध्याय में वे बताते हैं कि इस युग में आलस्य, रोग, भूख, भय सर्वदा रहेगा। अलग अलग विद्रोह, पाप, पुण्य, अधर्म, आचारहीनता, संकीर्ण विचार, महाक्रोध, आदि सहज देखने को मिलेगा। सच्चरित्रता का अभाव होगा, वर्ण और आश्रम व्यवस्था विच्छिन्न हो जायेगी इत्यादि कलि स्वभाव का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। आज हम जिस वैज्ञानिक प्रगतिशीलता के दौर में जी रहे हैं इस में मनुष्यों का नैतिक पतन भी हुआ है। व्यास हमें अपनी कुशलता से निरन्तर सचेत करते आ रहे हैं।

अन्ततः तात्पर्य यह है कि महर्षि व्यास का महापथिकत्व मनुष्य की विलक्षण बुद्धि से भी अगम्य है। वेदव्यास घोर तिमिर के मणिदीप हैं जिनका प्रकाश किसी भी झंझावात से प्रभावित नहीं हो सकता। व्यास का साहित्य अनिंद्य सौन्दर्य का प्रतिमान है। वे समस्त मानवीय सांस्कृतिक परम्पराओं के स्वच्छ प्रतिबिम्ब हैं। सहस्राब्दियों के गौरवमय इतिहास, ज्ञान, विज्ञान और सभ्यता के मूल तत्वों को व्यास ने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भावनात्मक एकता के सूत्र में बाँधकर मानव के कल्याण के लिए चिरन्तन और जीवन्त रखा है। ऐसे सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक उत्थान की परिकल्पना के महान सूत्रधार महामानव कृष्णद्वैपायन व्यास का उपजीव्यत्व अनन्त काल तक अभिनन्दनीय है।

असिस्टेण्ट प्रोफेसर,
सनातन धर्म आदर्श महाविद्यालय,
डोहगी, ऊना, हि.प्र.,

नारी शक्ति

बलिदान परम्परा का उच्चतम शिखर : पन्ना धाय

के.एस. गुप्ता

स्वामी भक्ति एवं राष्ट्र प्रेम की साकार प्रतिमा पन्ना धाय देश के अमूल्य रत्नों में दैदिप्यमान है। उसके प्रारम्भिक जीवन के बारे में जानकारी का अभाव है। लेकिन उदयलाल धायभाई ने बड़वे मोड़ीलाल की पोथी के आधर पर मान्यता व्यक्त की हैं कि पन्ना का जन्म पाण्डोली (चित्तौड़ के पास) ग्राम में हुआ था। उसके पिता का नाम हरचन्द हांकला गुर्जर था। उसका विवाह चित्तौड़ निवासी सूरजमल से हुआ था। वह मेवाड़ की सेना में नियुक्त था। पन्ना ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम चन्दन रखा। चन्दन के जन्म के कुछ दिनों के बाद ही मेवाड़ की महारानी कर्मवती ने पुत्र उदयसिंह को जन्म दिया। नव राजकुमार के लिए धाय के रूप में पन्ना को नियुक्त किया गया। निष्ठापूर्वक काम करने के कारण पन्ना के अल्प अवधि में ही राजमहल में सभी का असीम विश्वास प्राप्त कर लिया तथा रानी कर्मवती की मुख्य कृपा पात्र हो गई।

इसी बीच १५२७ में मेवाड़ के शासक महाराणा सांगा की खानवा युद्ध के कुछ समय पश्चात् मृत्यु हो जाने से राज्य में अव्यवस्था एवं अराजकता उत्पन्न हो गई। सांगा के उत्तराधिकारी रतनसिंह के राजत्व काल में विमाता हाड़ी रानी कर्मवती के अपने पुत्र विक्रमादित्य के लिए राज्य प्राप्त करने के प्रयासों ने राज्य की स्थिति को इतना विषम बना दिया कि रतनसिंह की मृत्यु के तथा विक्रमादित्य के गद्दी पर बैठने पर भी राजनैतिक वातावरण में विशेष अन्तर नहीं आया। मेवाड़ में व्याप्त अव्यवस्था ने गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह को मेवाड़ के विरुद्ध अभियान संचालन के लिए प्रेरित किया। सुल्तान के आक्रमण की सम्भावना से विक्रमादित्य एवं उदयसिंह को सुरक्षा की दृष्टि से उनके ननिहाल बुन्दी भेज दिया गया। पन्ना की कर्तव्यनिष्ठा से प्रभावित हो कर्मवती अपने पुत्र उदयसिंह के लालन-पालन से संतुष्ट थी। अतः पन्ना को भी उदयसिंह से साथ बुन्दी जाना पड़ा। अब उदयसिंह की गतिविधियां ही उसका कार्यक्रम हो गया। उसका पुत्र चन्दन भी निरन्तर अपनी माता के साथ ही रहता था। दोनों के प्रति पन्ना का व्यवहार सन्तुलित होता था। दोनों साथ-साथ में बड़े होने लगे। एक दूसरे के प्रति व्यवहार साथी के रूप में रहता था। ऐसे वातावरण में दोनों में घनिष्ठता भी स्थापित हो गई थी। उधर मेवाड़ पर बहादुर शाह ने इतना भयानक आक्रमण किया कि मेवाड़ की सेना कड़े प्रतिरोध के उपरान्त भी बहादुर शाह को चित्तौड़ पर अधिकार करने से न रोक सकी। कर्मवती एवं हजारों अन्य राजपूत ललनाओं को जौहर की ज्वाला में लीन होना पड़ा। पन्ना के दुर्भाग्य का कारण एक और था। उसका पति सूरजमल भी इसी आक्रमण के समय गुजरात की सेना का प्रतिरोध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। दारूण दुःख में भी अविचलित रह उसने उदयसिंह के लालन-पालन में अपने को पूर्ण समर्पित रखा।

चित्तौड़ बहादुरशाह की अधीनता में अधिक समय तक नहीं रहा तथा मेवाड़ ने इसे पुनः हस्तगत कर लिया। अब विक्रमादित्य तथा उदयसिंह पुनः बुन्दी से चित्तौड़ लौट आये। स्वाभाविक है कि पन्ना भी साथ ही चित्तौड़ पहुंच गई। विक्रमादित्य पुनः मेवाड़ का अधिपति हो गया। लेकिन अनेक उतार-चढ़ाव के उपरान्त भी उसके व्यवहार में अन्तर नहीं आया। सामन्तों एवं जनता में दिन-प्रतिदिन विक्रमादित्य के प्रति असन्तोष बढ़ता गया। इसका लाभ उठा कर सांगा के भाई पृथ्वीराज का पुत्र बनवीर महाराणा बन बैठा। विक्रमादित्य के असंतुष्ट सामन्तों ने भी बनवीर का समर्थन किया, लेकिन मेवाड़ के दुर्भाग्य का अन्त नहीं था। गद्दी पर तो बनवीर बैठ गया, किन्तु असुरक्षा की भावना से वह उभर नहीं सका। उसकी मान्यता दृढ़ होती जा रही थी कि जब तक सांगा के पुत्र विक्रमादित्य व उदयसिंह जीवित है तब तक उसके शासन को स्थायित्व प्राप्त नहीं हो सकता।

विक्रमादित्य का वध

स्वार्थ व्यक्ति को कुत्सित कार्य करने को ढकेलता है। यही स्थिति बनवीर की होने लगी। उसको सांगा के दोनों पुत्रों की मृत्यु में अपना उद्धार प्रतीत हुआ। अतः एक रात्रि के शान्त वातावरण में बनवीर अपने मन में मची हुई अशान्ति को दूर करने का निश्चय कर अपने निवास स्थान से निकला तथा विक्रमादित्य के महल की ओर गया। मन की योजना के क्रियान्विति में उसने समय नहीं खोया और अपने ही हाथों बनवीर ने विक्रमादित्य का वध कर दिया। शान्त वातावरण चित्कारों से गूंज उठा। लेकिन बनवीर के लिए यह हत्या ही पर्याप्त नहीं थी। उदयसिंह उस समय बालक था लेकिन राणा सांगा को कोई भी जीवित पुत्र उसके लिए कभी भी संकट का कारण बन सकता था। अतः उसका काम तमाम करना भी बनवीर को आवश्यक जान पड़ा। मन ही मन में निश्चय कर उसने अपना कदम उदयसिंह के निवास की ओर बढ़ाया।

पन्ना का अप्रत्याशित निर्णय

उदयसिंह का पालन-पोषण पूर्ण रूप से पन्ना के हाथों में केन्द्रित था। जौहर करने के पूर्व कर्मवती को उदयसिंह की परवरिश का पूरा ध्यान रखने का आश्वासन भी पन्ना से प्राप्त हो गया था। महारानी को उसके अन्तिम समय दिये गये विश्वास को पन्ना ने विस्मृत नहीं किया किन्तु उसकी वास्तविक परीक्षा तो अब होनी थी। विक्रमादित्य का वध तथा बनवीर के उदयसिंह की हत्या के लिए आने की सूचना विश्वस्त सेवक से ज्ञात हो गई थी। संकट बहुत गंभीर था और समय बहुत कम। निर्णय शीघ्र लेना था। विभिन्न विकल्पों पर विचार विमर्श का समय भी न था। यकायक पन्ना के चेहरे पर छाई चिन्ता का स्थान दृढ़ता ने ले लिया। उसके लिए वचन निर्वाह और व्यापक हितों के सामने मां की ममता गौण हो गई। कुमार की हत्या वह क्रूर व नृंशस बनवीर के हाथों कदापि नहीं होने देगी। देश, धर्म, कर्तव्य के लिए उसने अपना सर्वस्व न्यौछावर करने की ठान ली। कमरे में उपलब्ध फलों की टोकरी में बालक उदयसिंह को भली-भान्ति फूलों व पत्रों से ढांपकर एक विश्वस्त सेवक को शीघ्रता से दुर्ग से बाहर जाने के लिए रवाना कर दिया। साथ ही स्थान भी निश्चित कर दिया, जहां ठहर कर वह पन्ना की प्रतिक्षा करें। अब अपने पुत्र चन्दन को जो उदयसिंह के समवयस्क था, उदयसिंह के कपड़े पहनाकर कुमार के पलंग पर सुला दिया। चन्दन एक दम अबोध नहीं था। उसकी आयु १३ वर्ष के

करीब थी। वह सारी स्थिति से अनभिज्ञ नहीं हो सकता था। उसको यह आभास होने में सन्देह नहीं था कि वह कुमार के पंलग पर नहीं सो रहा है अपितु अपनी मृत्यु शैया पर लेट रहा है। फिर मां की आज्ञा को बिना किसी हिचक के स्वीकार कर उसने भी भी एक अनोखा, अविश्वसनीय उदाहरण प्रस्तुत किया। उधर अनुमान के अनुसार ही बनवीर अब निरापद राज्य करने के लिए उदयसिंह के निवास की ओर चल पड़ा। जहां पन्ना कर्तव्य की वेदी पर अपने ही सामने अपने एक मात्र जिगर के टुकड़े की इहलीला समाप्त होने की प्रतीक्षा में थी। कैसे जिया होगा पन्ना ने उन क्षणों को। सन्तुलित गहन गम्भीर कैसे रही होगी पन्ना। हिमालय सदृश दृढ़ संकल्प शक्ति की वह धनी थी। उसकी प्रतिक्षा शीघ्र समाप्त हुई। बनवीर की पदचाप ने उसे और अधिक सबल बना दिया। कुछ ही क्षणों के अन्तराल के पश्चात विक्रमादित्य के रक्त से सनी तलवार हाथ में लिए बनवीर पन्ना के सामने खड़ा था। उसको तो जुनून सवार था। बिना समय बर्बाद किए कुत्सित उद्देश्य की पूर्ति के लिए तत्पर था। अतः आते ही उसको न तो प्रकाश की आवश्यकता हुई न ही बच्चे को पहिचानने की। वह तो केवल उदयसिंह की ओर इशारा चाह रहा था। जब आदेशात्मक स्वरों में उदयसिंह के बारे में पूछा तो पन्ना की अंगुली ने राजकुमार के पंलग की ओर संकेत कर दिया। बनवीर ने अगले ही क्षण तलवार से शिशु के टुकड़े कर दिए। बच्चे के मुख से तो चीख निकली लेकिन पन्ना तो आह भी न भर सकी। उसको तो राजकुमार उदयसिंह को सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देना था। इतने महान त्याग के उपरान्त भी पन्ना अविचलित और सन्तुलित बनी रही। यह गहन आश्चर्य की बात है कि उनसे इतना ध्यान रखा कि सुबह होने पर राजकुमार की अन्तेष्टि होने पर सारा भेद खुल जाना निश्चित था। अतः रात्रि को ही मृत पुत्र का दाह संस्कार उसने कर दिया। इसके उपरान्त भी वह पूर्व निश्चित स्थान पर पहुंची जहां उदयसिंह को लेकर सेविका (बारिन) व उसका पति प्रतिक्षारत थे।

पन्ना की सुरक्षा यात्रा

विचार विमर्श कर पन्ना ने अपने पिता के घर जाना ठीक समझा। अतः देर रात्रि होने पर ही वे तीनों उदयसिंह के साथ पाण्डोली गांव में अपने घर पहुंचे। वहां कुछ दिन व्यतीत किए लेकिन आवश्यकता थी कि उदयसिंह को किसी महत्वपूर्ण सामन्त का आश्रय और सहयोग राशि प्राप्त हो। इसके लिए देवलिया (प्रतापगढ़) जाना उपयुक्त प्रतीत हुआ। उदयपुर से दूरी और वहां के रावल रायसिंह के प्रभावी होने से ही इस स्थान का चयन किया। रायसिंह ने पन्ना और उसके साथियों और बालक के ठहरने का प्रबन्ध किया। परन्तु जैसे ही वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो उसने बनवीर के भय से उदयसिंह को अपने यहां आश्रय देने में असमर्थता प्रकट की। अब वहां रहना उचित न मान अगले पड़ाव के लिए आपस में विचार विमर्श होने लगा। उन्होंने अपना गन्तव्य स्थान डूंगरपुर को बनाया। वहां भी निराशा ही हाथ लगी। वहां के शासक आशकरण ने भी बनवीर के भय से अपने यहां रखने में आनाकानी की। देवलिया एवं डूंगरपुर के प्रमुखों का यह रूख अत्यन्त क्षोभनीय प्रतीत होता है। एक नारी ने अपना सब कुछ खोकर मेवाड़ राज्य के एक मात्र वास्तविक उत्तराधिकारी को जीवित रखा लेकिन प्रभावशाली रावल, बनवीर के भय से उसको अपने यहां रखने तक का साहस न कर सकें।

उसको राज्य दिलाने में उनसे सहयोग की आशा करना व्यर्थ था। किन्तु निरन्तर निराशा ने भी पन्ना को हताश नहीं किया। अब उसने कुम्भलगढ़ जाने का निर्णय किया। चारों और घने जंगल और उंची पहाड़ियों से घिर होने से यह स्थान सुरक्षित था तथा वहां का किलेदार आशादेपुरा सांगा का विश्वसनीय पदाधिकारी था। अतः उदयसिंह को आश्रय प्राप्त होने की आशा की किरण भी दिख रही थी। जंगलों, नदियों, पहाड़ों की खाक छानते हुए पन्ना धाय और उदयसिंह कुम्भलगढ़ पहुंचे।

मिशन की सफलता

कुम्भलगढ़ पहुंचने पर बिना विशेष प्रतीक्षा किये किलेदार से मिलना हो गया। पन्ना की सारी दास्तान सुन एक बार तो आशाशाह भी असंमजस में पड़ गया। लेकिन इसी बीच उसकी मां के आ जाने से निर्णय लेने में विलम्ब नहीं हुआ। उसने अपने पुत्र की चिन्ता छोड़ दृढ़ता से कर्तव्य पालन की बात कही। आशादेपुरा की मां ने पन्ना के साहस, त्याग और बलिदान की ओर भी अपने पुत्र का ध्यान खींचा। राज्य और स्वामी हित के लिए अपने पुत्र का बलिदान करने वाली वह देवी अपने लिए कुछ नहीं चाह रही है। वह केवल उदयसिंह की सुरक्षा की मांग कर रही है। आवश्यकता केवल आश्रय देने तक की ही नहीं बल्कि वास्तविक हक दिलाने की है। आशाशाह भी हिचकिचाहट की स्थिति का सामना करने के पश्चात पन्ना को मंजिल की पहली सीढ़ी प्राप्त हो गई। १५४० में जब उदयसिंह बनवीर को हटा चित्तौड़ का महाराणा बना तब उसकी आशा पूरी हुई। उसके सानी का विश्व में कहीं भी उदाहरण नहीं मिलता। राज्य और स्वामी भक्ति की इतनी उच्च पराकाष्ठा जिसका उदाहरण पन्ना ने प्रस्तुत किया, वह मेवाड़ की गौरवशाली परम्परा विश्वभर में बलिदान परम्परा का उच्चतम शिखर है।

२३, पद्मिनी मार्ग,
रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राजस्थान)

शेष-अशेष

ठाकुर रामसिंह जी और असम प्रदेश

प्रो. लक्ष्मीश्वर झा

बाबा साहब आपटे स्मारक समिति दिल्ली के अध्यक्ष का उत्तरदायित्व मुझ पर होने के नाते, हम सब समिति के सदस्यों ने एक प्रस्ताव जनवरी २०१४ में पास किया कि १६ फरवरी, २०१५ को ठाकुर रामसिंह जी का १००वां जन्म दिवस है, अतः १६ फरवरी, २०१४ से १६ फरवरी, २०१५ तक के इस वर्ष को ठाकुर रामसिंह जन्मशताब्दी वर्ष के रूप में मनाया जाए। सभी सदस्यों को इस पर कार्य करने का दायित्व दिया गया। इसके कुछ दिनों बाद ही मुझे असम में होने वाले तीन सम्मेलनों में भाग लेने के लिए निमंत्रण मिला। पहला सम्मेलन गोगामुख लखीमपुर असम, दूसरा देर गांव जोरहाट, गोरयाघाटे असम और तीसरा अगरतला मणिपुर का था। हां एक छोटा सा कार्यक्रम शिलांग का भी था।

पहला कार्यक्रम गोगामुख का १७-१९ दिसम्बर २०१३ को था। इस क्रम में मैं गोहाटी में एक कार्यकर्त्ता के घर ठहरा था, उससे मेरी बातचीत हुई, तो शिवाचार्य वर्तमान प्रान्त प्रचारक असम के विषय में कहा गया कि वे ठा. रामसिंह को अच्छी तरह जानते हैं। अतः मैं उन से मिलूं। संयोग से आ. शिवाचार्य जी मुझे गोगामुख में मिल गये तो उन्होंने कहा कि मैं स्वयं ठाकुर जी के साथ काम करने का सौभाग्यशाली नहीं हूं परन्तु मेरे चाचा जी ने उनके साथ बहुत काम किया था। दुर्भाग्य से वे अब नहीं रहे। जब मैं शिवाचार्य के निवास पर गया तो ठाकुर जी के साथ उनके चाचा जी के अनेक फोटो वहां टंगे थे। शिवाचार्य के अनुसार भारत की स्वतन्त्रता के बाद आसाम में संघ की स्थिति बहुत दयनीय हो गयी थी और सामान्य जनता में संघ के प्रति अच्छी धारणा नहीं थी। ऐसी विषम परिस्थिति में काम करना, शाखा लगाना आदि दुष्कर हो गया था। परन्तु ठाकुर रामसिंह जी ने बडपुजारी, मखनलाल शर्मा आदि का साथ लेकर लखीमपुर में एक नगर निगम स्कूल में शाखा का कार्य प्रारम्भ किया। उन दिनों प्रान्त कार्यालय गोहाटी में उजान बाजार के धीरेश्वर कुटीर में था जो लखमीपुर से पांच सौ किलोमीटर दूर तथा ब्रह्मपुत्र जैसी नदी को पार कर जाना पड़ता था। परन्तु ठाकुर जी महीने में एक बार अवश्य वहां संघ कार्य देखने जाया करते थे। सम्मेलन समाप्त हो जाने के बाद २०.१२.१३ को मैं केशव धाम पलटन बाजार गोहाटी आ गया, वहां पर मैं मधुकर लिमये जी से मिला। वे उन दिनों में ज्वर-क्रान्त होने के कारण बीतचीत करने की स्थिति में नहीं थे। तत्पश्चात् २१.१२.२०१३ को मैं वापस दिल्ली आ गया क्योंकि सोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालय गुजरात में एक प्रोफेसर की नियुक्ति हेतु साक्षात्कार लेने सोमनाथ जाना था तथा वहां से पूना में होने वाला द्वादशाह अतिरात्र सोमयाग में प्रवचन के लिए पूना भी जाना था।

दिनांक १०-१२ मार्च २०१४ को देर गांव में होने वाले वैदिक सम्मेलन में भाग लेने हेतु मैं

पुनः असम की यात्रा पर दिल्ली से राजधानी एक्सप्रैस से मरियानी उतर कर जोरहाट पहुंचा, वहां व्याख्यान के अतिरिक्त बड़ पुजारी जी से मिला जो पुराने स्वयं सेवक थे तथा मा. ठाकुर जी के साथ उन्होंने बहुत काम किया था। उनसे बातचीत सर्किट हाउस में ही हुई। जहां मैं ठहरा हुआ था। जब मैंने उनसे पूछा कि बताइये कि ठाकुर रामसिंह जी ने यहां पर कौन-कौन से प्रमुख कार्य किये तो छूटते ही बड़ पुजारी जी ने कहा कि यह कहना कठिन होगा अपितु यह कहना आसान होगा कि उन्होंने क्या नहीं किया? ठाकुर जी आकर्षक व्यक्तित्व के धनी और अपनी बात को दूसरों के समक्ष बड़े प्रभावी ढंग से रखने में दक्ष थे। परिणामतः हर पढ़े लिखे और समझदार उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते थे। जिसके कारण असम में संघ फिर जीवित हो पाया। ठाकुर राम सिंह जी का प्रथम परिचय श्रीचितरंजन बनर्जी से हुआ और फिर उमाशंकर बनर्जी से, चन्दन माधव जो बहुआ जी के पिताजी थे, भैरव फूकन वकील, कामाध्या बरुआ के संपर्क में आये।

कामाध्या प्रसाद बडुआ गोहाटी हाई कोर्ट के जज थे। धीरे-धीरे उनके परिवार के सदस्यों के सम्पर्क में आये, जिन में प्रमुख थे गिरिशचन्द्र कान्ता, प्रफुल गोस्वामी, सरकार की लड़की तथा अजयराय चौधरी। उनके सहयोग से संघ का कार्य गोहाटी तथा आस-पास के क्षेत्र में चल पड़ा। एक दो स्वयं सेवक से मिलाने की बात बड़पुजारी जी ने कही परन्तु समयाभाव के कारण मैं उनसे मिल नहीं पाया क्योंकि दूसरे दिन मुझे देर गांव वैदिक सम्मेलन में जाना था। वहां से सम्मेलन की समाप्ति पर मैं गोहाटी पलटनबाजार केशव धाम आ गया जहां मुझे पूर्णस्वस्थ मधुकर लिमये जी मिले उनसे मिलकर वड़ी प्रसन्नता हुई तथा वे भी सहर्ष बातचीत के लिये उघत हो गए।

मधुकर विश्वनाथ लिमये जी, प्रान्त प्रचारक गोहाटी, असम।

मधुकर जी ने बताया कि ठाकुर राम सिंह जी सर्वप्रथम प्रान्त प्रचारक होकर असम गोहाटी १९४९ में आये थे और में एक साल के बाद यहां आया। ठाकुर जी इससे पहले पंजाब में प्रचारक थे। १९४९ में ही असम बंगाल से अलग हुआ था। गांधी जी की हत्या के बाद असम क्या, समस्त देश में संघ के विरुद्ध वातावरण बन गया था। ठाकुर जी ने सर्वप्रथम गोहाटी के प्रमुख लोगों से मिलना प्रारम्भ किया तथा उनको संघ की कार्य योजना से परिचित कराकर संघ की ओर मोड़ा। उनमें थे - गुरुपद भौमिक गोहाटी हाई कोर्ट के वकील, डॉ. दिलीन कुमार सरकार गोहाटी, प्रान्तोषराय ज्योतिष पाठक, सतीश तहविलदार, नवकान्तबरूआ, मानिक चन्द्रदाश (क्षेत्रकार्यवाह), शशि कान्त, चौथाई वाले, विनायक चाणक्य, सन्तसरकार, गोरीशंकर चक्रवर्ती, महेश चन्द्र मेधी, डॉ. भारत चरित, दीपक कुमार बड़ ठाकुर, श्री कृष्ण मुद्गल, मलमल जी नाहर, दयालकृष्ण जी।

ठाकुर रामसिंह जी अदम्य साहसी थे

असम के महापुरुषों में शंकरदेव एवं वीरलचित बड़फूकन के नाम प्रसिद्ध थे। वे ब्रह्मपुत्र नदी में तैरा करते थे तथा समाज का मार्गदर्शन भी करते थे। ठाकुर जी ने एक दिन सांय शाखा में कहा कि असम समाज में परिवर्तन लाने के लिए केवल इनके नाम लेने से काम नहीं चलेगा। अपितु उनके जैसे कार्य करने होंगे। अतः चार तरुण स्वयसेवकों को ब्रह्मपुत्रनदी तैरकर पार करने को प्रेरित कर तैयार किया और उनको लेकर गुवाहाटी के उजानबाजार के घाट पर पहुंचे तथा एक नाव भी किराया पर

लिया। उन चार स्वयंसेवकों में से केवल दो के नाम स्मरण हैं। एक स्वर्गीय अतनु वरूआ तथा दूसरे स्व. अरुण राय चौधरी। जब नदी में उतरे तब बड़े उत्साह के साथ आगे बढ़े परन्तु उस पर आमीन गांव घाट केवल ठाकुर राम सिंह ही पहुंचे ऐसे जीवट के थे ठाकुर राम सिंह जी।

१९५० ई. सन् में ठाकुर जी का परिचय गोहाटी के भद्रपुरुष श्री कामाख्याराम बडुआ से हुआ। उन दिनों वे मणिपुर हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश थे। मा. ठाकुर जी की बातों तथा सिद्धान्तों का श्री बडुआ जी स्वागत करने लगे फलतः १९५० ई. सन् में जब मा. गुरु जी गुवाहाटी आये तब उनको श्री बडुआ जी के घर पर ही ठहराया गया। मा. गुरुजी के स्नेहिल एवं आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर श्री बडुआ जी ने सर्वत्र सभ्य समाज में ठाकुर जी को ले जाकर परिचय कराया तथा उनके कार्य से अवगत करवाया। श्री बडुआ जी कहते थे कि संघ के हिन्दू राष्ट्र की सोच से मैं न्यायाधीश के रूप में सहमत नही हूं। परन्तु एक अनुशासित समाज की संरचना तथा उसके द्वारा अनुशासित राष्ट्र के निर्माण के कार्य से मैं इतना प्रभावित हूँ कि प्रत्येक नवयुवक को संघ के कार्य से जुड़ना चाहिए। उसमें कोई बिलम्ब नहीं होना चाहिए। इसी से असम तथा उसका समाज भविष्य में सुरक्षित रहेगा। स्वयं कामाख्या जी संघ के सभी कार्यों से सक्रिय रूप में जुड़े रहे।

देश के सर्वप्रथम निर्वाचन के समय कामाख्या राम बडुआ 'कृषक मजदूर प्रजा पार्टी' के उपाध्यक्ष थे। पार्टी के अन्य घटकों ने संघ से सम्पर्क न रखने की शर्त रखी, तब कामाख्या जी ने कहा - मैं पार्टी से त्यागपत्र दे सकता हूं परन्तु संघ से सम्बन्ध नहीं तोड़ सकता। मैं जानता हूं कि संघ के कार्यकर्ता, विश्वसनीय, परिश्रमी और निस्वार्थी होते हैं। कामाख्या जी के इन निर्भीक शब्दों ने उस विवाद का अन्त किया। निर्वाचन के बाद राजनीति से सम्बन्ध तोड़ लिया और जीवन भर संघ के कार्यों से जुड़े रहे।

ठीक इसी प्रकार माननीय श्री तीर्थनाथ शर्मा जी का परिचय मा. ठाकुर जी के साथ हुआ। शर्मा जी संस्कृत के विद्वान थे और प्रागूज्योतिष महाविद्यालय के प्रिंसिपल थे। सम्पूर्ण जीवन उन्होंने विश्वहिन्दू परिषद् के लिए काम किया और अनेकों वर्षों तक परिषद् के सभापति रहे। उनकी सहायता से अनेक संस्कृत विद्वान मा. ठाकुर जी के सम्पर्क में आये। वे असम साहित्य सभा के भी अध्यक्ष थे। जिस प्रभाव के कारण संस्कृत क्षेत्र में संघ की गतिविधियां ठाकुर जी ने बढ़ाई और अपने कार्यक्षेत्र को बढ़ा कर संघ को मजबूत बनाया तथा संघ के सुयोग्य कार्यकर्ता बनाने में ठाकुर जी ने महनीय कार्य किये।

ठाकुर राम सिंह के व्यक्तित्व एवं स्वभाव में एक अद्भुत आकर्षण था, जिसके कारण जो उनके सम्पर्क में एक बार आ जाता था, वह उनका सदा के लिए बन कर रह जाता था। एक घटना १९६६-६७ की रही होगी। कामपुर के एक किशोर स्वयंसेवक के बड़े भाई का विवाह हुआ था। उसमें मा. रामसिंह ठाकुर जी और मा. मधुकर लिमेय जी को निमंत्रण प्राप्त हुआ। मा. ठाकुर जी मोटर साइकिल पर बिठाकर नौ गांव से कामपुर चले। ठाकुर जी मोटरसाइकिल बहुत तेज चलाते थे। विवाह में सबसे मिलना तथा खाते-पीते शाम हो गयी। गोहाटी के लिए प्रस्थान करते-करते अन्धेरा हो गया। नौ गांव के समतल क्षेत्र के बाद पहाड़ी क्षेत्र में जब पहुंचे तो रात के अंधेरे में वार्डर रोड पर मजदूर रोड

को ठीक कर रहे थे। रास्ता बहुत संकरा था, पीछे बगल में सौ ढेड़ सौ फुट की खाई थी, उससे बचकर निकालने की कोशिश में मोटर साईकिल पाइप से टकरा गयी और चकनाचूर हो गई। मडगार्ड टूट कर मा. ठाकुर जी के पांव मे लग गया जिससे पांव की हड्डी टूट गई। ठाकुर जी को बहुत चोट लगी, साथ मा. मधुकर जी को भी। सौभाग्य से ट्रक वहां पर आ गया, दुर्घटना देख ट्रक रूक गया, ट्रक ड्राइवर से प्रार्थना की मेडिकल कॉलेज तक हमें छोड़ दे। बड़ी मुश्किल से मा. ठाकुर जी को सीट पर बैठाया। ड्राईवर ने कहा घबराइये नहीं, ठीक हो जायेंगे। ठाकुर जी ने उसे डांटते हुए कहा - यहां कौन घबराता है, आंखों से पानी तक निकलता है क्या? तुम सीधे देखकर गाड़ी चलाओ। मा. ठाकुर जी के इस साहस को देख कर ड्राइवर डर गया और ट्रक को ले जाकर मेडिकल कालेज के हास्पिटल में खड़ा कर दिया। ठाकुर जी के पांव का आपरेशन हुआ। लोहे का रोड लगा प्लास्टर भी चढ़ा। मा. मधुकर जी रात में गोहाटी चले गये। प्रातः काल नौ बजे पहुंचे तो हास्पिटल के कक्ष संख्या १५ में ठाकुर जी को रखा गया था, उसके गेट पर मुकुल सैकिया स्वयंसेवक की बहन मेडिकल कॉलेज में द्वितीय वर्ष की छात्रा थी, वह खड़ी मिली। उसने आश्चर्य से पूछा, मधुकर जी आप यहां कैसे? तब मधुकर जी ने ठाकुर जी की दुर्घटना के विषय में बताया और उनसे मिलने के लिए कहा। ठाकुर जी तीसरे दिन पूर्णतः होश में आए थे। ठाकुर जी ने मधुकर जी से कहा कि मुझे अगरतला में बैठक लेनी थी परन्तु अब में जा नहीं सकता अतः आप ही चले जाओ विमान से। वहां के कार्यकर्ता को समझा कर संघ शिक्षावर्ग में पूरे जोश से भाग ले। अपने प्रान्त में कार्यकर्ताओं की कमी है। संघ शिक्षावर्ग में जितने कार्यकर्ता बढ़ेगे, अगले साल उतना ही कार्य बढ़ेगा।

अगरतला से तीसरे दिन लौटकर जब ठाकुर जी से मिलने मधुकर जी उनके कमरे में पहुंचे तो उस हास्पिटल के कमरे में १५-२० छात्र-छात्राएं वहां मौजूद थे। उनमें आठ से दस नागा-मिजों के वनवासी थे। परजा सैकिया से बात करने पर पता चला कि ठाकुर जी की दुर्घटना के बारे में जब छात्रों को पता-चला तब खाली पीरियड में उनसे मिलने और बात करने सब आ जाया करते हैं। छात्र उनकी बातों से बड़े प्रसन्न थे। ऐसा आकर्षक व्यक्तित्व था।

दुर्घटना के तीसरे दिन पान बाजार के मुख्यशिक्षक को बुलाकर स्वयंसेवकों के नाम लिखने को कहा, तब जितने नाम लिखकर मुख्य-शिक्षक लाये थे उससे अधिक नाम ठाकुर राम सिंह जी को याद थे। तब स्वयंसेवकों के निवास स्थानानुसार गट बनाये गये और प्रत्येक गट की बैठक लेना ठाकुर जी ने हास्पिटल में ही आरम्भ कर दिया। उसी बीच कामपुर में संघ शिक्षावर्ग लगा, पांव में प्लास्टर था, फिर भी उसमें भाग लिया और सभी वर्ग के स्वयंसेवकों से बातचीत की।

संघ के अच्छे प्रचारक का लक्षण होता है– स्वयं के प्रति कठोर और अन्य के प्रति उदार। मा. ठाकुर जी में यह गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान था। उनके सम्पर्क मे आये सभी स्वयंसेवक यह अनुभव करते थे कि ठाकुर जी नारियल के समान कठोर बाहर से थे अन्दर से अत्यन्त मृदुल थे। अतः जो धैर्य के साथ ठाकुर जी के साथ काम करता था उसे उसकी मृदुता का आनन्द अवश्य मिलता था।

असम के अपने २२ वर्ष के कार्यकाल में अपने स्नेहपूर्ण व्यवहार से बहुत से प्रचारक तैयार किये। उससे पहले प्रचारक और शाखा दोनों नगण्य थी परन्तु अपने कार्यकाल के अन्त में असम में

लगभग १००० शाखाएं सक्रिय रूप से कार्य करती थी।

एक नियमित एवं परिश्रमी कार्यकर्ता स्वयंसेवक अपने कार्य से जिला कार्यवाह तक पहुंच गया और इण्टर की परीक्षा भी पास कर गया परन्तु बी.ए. की परीक्षा में फेल हो गया। यह बात जब मा. ठाकुर जी को पता चली, तब उसे उत्साहित कर कार्यालय में रखा और पढ़ाई जारी रखने का परामर्श दिया परन्तु वह छात्र फिर भी परीक्षा में फेल हो गया जिसके कारण वह स्वयंसेवक लज्जित होकर घर से बाहर भी नहीं निकलता था। ठा. राम सिंह जी उनके घर गए। स्वयंसेवक सहित उसके माता-पिता को समझाया और पुनः उसे गोहाटी ले आये। बड़े प्रेम धैर्य से उसका उत्साह बढ़ाते हुए बी. ए. पास कराया और तभी से वह लगभग ४० वर्षों से संघ का प्रचारक है। प्रचारकों की न्यूनतम संख्या से खिन्न ठा. रामसिंह जी ने एक दिन कहा कि असम से प्रचारक निकलता ही नहीं। तब मा. मधुकरजी ने कहा-यहां से प्रचारक निकले तो हैं– पर वे दो या तीन साल तक की बाहर कार्य करते हैं। दीर्घकाल तक के लिए प्रचारक बहुत कम निकलते हैं। तब मा. रज्जु भैया के निर्देश पर असम से निकले प्रचारकों की सूची बनाई और देखा कि जहां आन्ध्रप्रदेश में उस समय तक ७२ प्रचारक निकले थे, वहां असम से ८२ प्रचारक निकले थे। यह गणना लगभग १९९५-९६ की थी। मा. राम सिंह के कार्यकाल में असम से पचास प्रचारक निकले थे। उस समय चौथी कक्षा पास से लेकर पी.एच.डी. तक प्रचारक थे। पर्वतीय बनाञ्चल जनजाति से भी १५ प्रचारक थे। ठाकुर जी में कार्यकर्ता को पहचानने की क्षमता अद्‌भुत थी। स्वयंसेवकों को उनके गुणों के अनुसार कार्य को सौंपते थे और कार्य सम्पन्न होने पर उसका श्रेय भी उन्हें देते थे। इसी का परिणाम था कि उनमें से कितने प्रचारक निकले।

सुप्रसिद्ध कामाख्या धाम के अभयानन्द आश्रम में प्राथमिक शिक्षा वर्ग लगा हुआ था। उस समय आसाम में लगभग २२-२३ शाखायें लगती थी। आवास की व्यवस्था अभयानन्द आश्रम में थी और संघ स्थान उससे लगभग ५० फीट की ऊँचाई पर था। पानी की कमी के कारण स्नान के लिए ३-४ सौ फीट नीचे ब्रह्मपुत्र नदी में जाना होता था। मा. मधुकर जी के घुटनों में चोट के कारण दर्द था। थोड़ी देर चलने पर पैर फूल जाता था और घुटना भी। शिक्षकों के अभाव के कारण उन्हें शिक्षावर्ग चलाना पड़ा था। समारोप में पूर्वांचल प्रमुख श्री एकनाथ जी आये थे और गोवाहाटी के सूरजमल अग्रवाल थे। कबड्डी खेल में मुझे पुनः मुंह में चोट लग गयी और मुंह सूज गया। यह सूचना जब ठाकुर राम सिंह जी को मिली तो उन्होंने सभी शिक्षार्थी वर्ग को, शिक्षक प्रचारक को अपने-अपने सामान नीचे रख कर भोजन के बड़े-बड़े बर्तन भी नीचे तक पहुंचाने को कहा। ठाकुर जी जब मधुकर जी का सामान उठाकर ले जाने लगे तो मधुकर जी ने ऐसा नहीं करने दिया और स्वयं कष्ट होते हुए भी पहाड़ पर दो बार चढ़- उतरकर अपने सामान को नीचे लाये और गोहाटी कार्यालय पहुंच कर बेहोश हो गये और तब ठाकुर जी स्वयं गर्मपानी हल्दी, फिटकरी आदि मिलाकर रातभर सेक करते रहे।

मा. ठाकुर राम सिंह जी सोते बहुत कम थे। उनके सोने की परीक्षा करने लगे नागपुर के प्रचारक श्री कृष्ण मोतलग जी, जो कि आठ वर्ष तक असम गोहाटी में ठाकुर जी के साथ कार्यालय में रहे। उन्होंने यह जानना चाहा कि ठा. राम सिंह जी कब सोते है। उन्होंने कभी भी ठा. रामसिंह जी को

सोते हुए नहीं देखा। रात १ बजे तक उनके कमरे में दिया जलता रहता था और वे लिखते-पढ़ते रहते थे। कभी-कभी रात के तीन बजे देखा तो वे अपने कार्य में लगे हुए रहते थे। एक रात तीन बजे के करीब उनके कमरे में प्रकाश देखकर वहां गया तो ठाकुर जी जागे हुए थे। पूछने पर पता चला कि बृद्धमाता जी गांव में अकेली है और बिमार है। इसकी चिन्ता में नीन्द नहीं आती है। ठाकुर राम सिंह जी तीनों भाईयों में बड़े थे और संघ के कार्य से हिमाचल प्रदेश से दूर असम में थे। बीच वाला भाई घर छोड़ कर गया तो आया नहीं और छोटा भाई नौकरी करता है और शहर में रहता है। तब मुझे समझ में आया कि इस बीतरागी के मन में मां के प्रति कितना अगाध प्रेम था। १९५९ में ठाकुर राम सिंह जी अपनी पिताजी के चतुर्थवार्षिक श्राद्ध करने के लिए अपने गांव गये हुए थे। नागपुर में अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा का आयोजन था। मा. एकनाथ जी ने श्रीमधुकर लिमेय जी को असम का प्रतिनिधित्व करने के लिए बुलाया, जो उनका यह पहला अनुभव था। १९७१ में पंजाब प्रदेश में उतरदायित्व सम्भालने वहां गये और वहां से लगभग १० वर्षों के बाद इतिहास संकलन समिति के गठन के सन्दर्भ में पुनः असम आये, उस समय मधुकरजी से ठाकुर जी की खूब बातचीत हुई। असम के प्रति उनका लगाव बहुत अधिक था। परन्तु मा. गुरुजी का आदेश था, जिसे वह टाल नहीं सकते थे। इसके बाद जीवन के अन्तिम क्षण तक यह तपस्वी अविरत कर्म पथ पर चलता रहा। जीवन के आखिरी चरण में कुछ वर्ष नेरी में ठाकुर जगदेव चन्द इतिहास शोध संस्थान को विकसित करने में लगा दिये। उनके साथ अनन्त स्मृतियां है, जिन्हें शब्दों में बांधना सम्भव नहीं। वे तो हमारे आराध्य देव, जीवन पथ प्रदर्शक तथा संघ के आदर्श पुरुष थे।

मानिकचन्द दास (क्षेत्रकार्यवाह असमक्षेत्र)

मा. रामसिंह ठाकुर जी ने मुझे अपने हाथ से, परम स्नेह और उदारता से बनाया था। तेजपुर के धर्मदरांग कालेज में विद्यार्थी वर्ग में सर्वप्रथम दर्शन हुआ। वहां से विस्तारक बन कर निकला और गोहाटी काटन कॉलेज में प्रवेश लेकर अध्ययन तथा संघ का सायं विभाग गोहाटी नगर का कार्य देखने लगा। यह उत्तरदायित्व भी ठाकुर जी ने ही दिया था। गोहाटी के रेलवे स्टेशन से मोटर साइकल पर पानबाजार जाता था जिसे मा. ठाकुर जी चलाते थे। कहते थे, सभी स्वयंसेवकों को गाड़ी-चलाना, तैरना आदि आना चाहिए। कामपुर में मा. ठाकुर जी स्वयं सेवकों को लेकर नदी में तैरना सिखाते थे।

१९५६-५७के दिसम्बर में परम पूजनीय गुरु जी के आगमन पर अखिल असम की शाखाओं का शिविर लगाया गया था। उसमें टेन्ट कैसे लगाना चाहिए, जिससे सीधी रेखा में टेन्ट हो तथा उनकी खुंटियां चारों ओर पंक्ति में सीधी चाहिए। कार्यालय में मच्छरदानी लगाने की विधि सिखाई। रात में जब देखता था, पढ़ते लिखते ठाकुर जी मिलते थे।

आठ गांव के कार्यालय में बैठक ले रहे थे। रात के ११-१२ बजे के करीब ठाकुर जी का टेलिग्राम आया, जिसमें उनके पिता जी की मृत्यु की सूचना थी लेकिन मा. ठाकुर रामसिंह जी ने बैठक नहीं छोड़ी। रात में भोजन के लिए नहीं आये तो हम सब उनके पास गये। उस समय उन्होंने बड़े दुःखी मन से टेलीग्राम दिखाया, जिसमे उनके पिता जी के देहान्त का समाचार था।

१९६९-७० की बात है – सायं विभाग की बैठक ले रहे थे। मैं उन दिनों सायं विभाग देखा करता था। उस समय मैं टीचर ट्रेनिंग भी करता था। सतीश तवेलदार, ज्योतिष पाठक आदि के साथ ब्रह्मपुत्र नदी तैरने की योजना बनीं, जिसकी चर्चा मधुकर लिमये ने की है।

१९५७ जून में पटना संघ शिक्षा वर्ग में, गोहाटी का एक स्वयंसेवक गंगा नदी में डूबकर मर गया। मा. ठाकुर जी उसकी माता को विशेष आश्वासन पर मांगकर पटना लाये थे। उस स्वयंसेवक को पानी से बहुत डर लगता था। पटना में गंगा है। अतः वह अपने पुत्र को वहां नहीं भेजना चाहती थी। लेकिन होनी को कोई टाल नहीं सकता था। सबके साथ गंगा स्नान किया और कपड़े धोने के लिए पुनः गया और वहीं यह दुर्घटना हो गई।

ठाकुर जी के साथ अनन्त घटनाएं स्मरण तथा सीख आज भी उसी प्रकार जीवित है, जितना कि उस समय थी, लेकिन उनको शब्दों में समेटना सम्भव नहीं है। अतः विराम देता हूँ।

मा. ठाकुर जी के सम्पर्क में रहने वाले सभी स्वयंसेवक लगभग एक ही प्रकार की घटना की पुनरावृति किया करते थे। अतः मैंने पुनरुक्ति दोष से बचने के लिए उनकी आवृति नहीं की है।

इसके पश्चात् मैं शिलांग गया और वहां के उन स्वयंसेवकों से मिला जो कभी ठाकुर राम सिंह जी के साथ काम किया करते थे।

शिलांग यात्रा

१४.३.२०१४ को गोहाटी से प्रातः १० बजे शिलांग के लिए चला लगभग दो बजे शिलांग अंजाती पेट्रौल पम्प पर उतरा, वहां से चन्द्रशेखर जी के साथ तीन बजे के करीब संघ कार्यालय पहुंचा। सायंकाल कुछ पुराने स्वयंसेवकों से मिला, जिनमें पहले थे –

भगवती प्रसाद गोयनका जी

जब मैंने ठाकुर रामसिंह जी के विषय में कहा तो वे छूटते ही कहते हैं- ठाकर रामसिंह जी कार्यालय में, शाखा में, या अन्य संघ की विधियों में राजनैतिक चर्चा के सख्त विरुद्ध थे। एक बार कुछ स्वयं सेवक संघ कार्यालय में राजनैतिक चर्चा में संलग्न थे, इसी बीच ठाकुर जी वहां आ गये और क्रोध से आग बबूला हो गये तथा तत्काल सभी स्वयंसेवकों को कार्यालय से निकल जाने को कहा। उनका मत था कि केवल हिन्दू धर्म की बात करो, शेष बात को भूल जाओ। थोड़ी देर के बाद ठाकुर जी शान्त हो गये और बड़े प्रेम से अपने बच्चों जैसा व्यवहार करते हुए समझाया था कि राजनीति हमारे संगठन को कमजोर करती है। अतः उससे दूर रहकर ही संघ मजबूत बना सकते हैं। ठाकुर जी की एक बड़ी विशेषता थी कि स्वयंसेवक को अपने साइकिल पर बैठा कर शाखा में ले जाया करते थे और वापस घर पहुंचाया करते थे। सबेरे घर जाकर जगाना, संकट के समय में पूरी सहायता करना। यही कारण था कि असम में संघ इतना मजबूत हो पाया।

शेख रंजन दास

१९४७ में बंगलादेश (पाकिस्तान) बन जाने पर असम में अनेक प्रकार के समीकरण बदले। असम के हिन्दू, बंगाली हिन्दू के विरुद्ध थे। अतः राजनैतिक समीकरण बनाने के लिए असामी मुसलमान को साथ रखना प्रारम्भ किया और बंगाली हिन्दू का विरोध करना शुरु किया। ऐसी स्थिति

में संघ एवं हिन्दू संगठन को मजबूत बनाने के लिए ठाकुर जी ने १९६३ की जनगणना का अध्ययन किया और देखा कि हिन्दू शिक्षा, धन सम्पति और जनसंख्या में नं. एक पर है। अगर सारे हिन्दू एक हो जाए तो असम हिन्दू राज्य बन जायेगा। इस दृष्टि से संगठन का सशक्त करने का प्रयास किया और बहुत हद तक सफल भी रहे। बाद में एक असम से सात राज्य बने परन्तु सब में राष्ट्रीयभावना का विकास हिन्दुत्व के बल पर ही बन सकता है, ऐसा अनुभव किया जाने लगा।

रंजीत अध्यापक

ठाकुर जी के साथ बहुत दिनों तक साथ रहा। गोहाटी तथा आसपास के नगरों में ठाकुरजी के साथ काम किया। उनकी रीढ़ की हड्डी में भंयकर दर्द होने के वे कारण बात करने की स्थिति में नहीं थे, परन्तु वे अपना मार्ग दर्शक ठाकुर रामसिंह को मानते थे।

दयालकृष्ण जी (गोहाटी)

१९४९ में पहले प्रान्त प्रचारक बन कर ठाकुर रामसिंह जी गोहाटी आये थे। सितम्बर १९४६-४७ में गोहाटी में शाखा प्रारम्भ हुई। १९४९ में असम और बंगाल अलग-अलग हुए। गांधी जी की हत्या के बाद संघ के प्रति जनभावना विरुद्ध थी। उस माहौल में ठाकुर रामसिंह जी प्रान्त प्रचारक बनकर आये थे। ठाकुर जी ने अपने हाथ से असम का इतिहास लिखा। वे कहते थे कि मंगोलियन, चीनी मूलतः भारतवंशी हैं। भगवान विष्णु के दो पुत्र थे। एक नरकासुर और दूसरा मंगल। मंगल ने अलग देश बसाया जिसे मंगोलिया कहते हैं। अतः मंगोलियन संस्कृति को विष्णु संस्कृति कहते हैं। असम प्रदेश के इतिहासकार, साहित्यकार आदि से ठाकुर जी का अच्छा सम्पर्क हो गया था। जैसे - बेणुधर शर्मा, तीर्थनारायण शर्मा, कामाख्यानाथ बडुआ आदि। ये सभी विद्वान ठाकुर जी के मत से प्रभावित थे। इससे पहले पुराणों को इतिहासकार महत्व नहीं देते थे। असम का राजा नरकासुर का पुत्र भगवदत्त महाभारत काल में था। भगवदत की पुत्री भानुमती से दुर्योधन का विवाह हुआ था। गोहाटी नगर के मध्य फैन्सीबाजार में हाईकोर्ट के समीप आज भी भानुमती तालाब विद्यमान है, जिसे दुर्योधन ने बनवाया था, ऐसा इतिहासकारों का मत है।

असम में संघ के लौह पुरुष मानते थे - ठाकुर रामसिंह को। उन्होंने बहुत ही सुनियोजित योजना से संघ का विस्तार सारे असम में किया। मैं उन्हें बार-बार प्रणाम करता हूं।

अध्यक्ष,
बाबा साहेब आपटे स्मारक समिति
दिल्ली

ध्येय पथ

इतिहास लेखन में लोक गाथाओं का योगदान विषय पर त्रिदिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद

डॉ. ओम प्रकाश शर्मा

लोक गाथा लोकसाहित्य की एक विशिष्ट विधा है। लोक साहित्य की इस विशिष्ट विधा में आदि सृष्टि से वर्तमान युग तक देवस्तुतियों, देवपराक्रमों, देवकार्यों, राजाओं के पराक्रमों, युद्धों, दानस्तुतियों, वीरचरितों एवं प्रेमाख्यानों आदि के ऐतिहासिक प्रसंग भी कालक्रम में निबद्ध होते रहे हैं। ऋग्वेद में गाथा, गाथपति, गाथानी, गाथिन् तथा गाथाश्रवस जैसे शब्दों का उल्लेख मिलता है। ये शब्द गाथाओं के कालक्रमिक इतिहास को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

जनमानस के अन्तस् की अभिव्यक्ति गाथाकार अपनी इन गाथाओं में करते आए हैं। इन गाथाओं में लोक इतिहास अक्षुण्ण रूप से निबद्ध होता गया। ऐसा इस लिए हुआ क्योंकि गाथाकार किसी भी घटना अथवा आख्यान का चित्रण सत्यं, शिवं और सुन्दरम, इन तीन मूलभूत पक्षों के दृष्टिकोण से करता था। गाथाओं के ये आधार एवं दृष्टिकोण ही इतिहास के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इन्हीं स्रोतों को शोध का विषय बनाने तथा लोक इतिहास के इन बिन्दुओं को इतिहास लेखन के लिए एक नई दिशा प्रदान करने के उद्देश्य से ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी में - **इतिहास लेखन में लोक गाथाओं का योगदान** विषय पर **श्रद्धेय ठाकुर राम सिंह जन्म शताब्दी कार्यक्रम की शृंखला** में त्रिदिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का शुभारम्भ आश्विन कृष्ण ५, कलियुगाब्द ५११७, विक्रमी संवत् २०७२ तदनुसार, २ अक्तूबर २०१५ को हुआ। इस परिसंवाद में आसाम, उत्तर प्रदेश, उतराखण्ड, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, मध्यप्रदेश, जम्मू-कश्मीर, और हिमाचल के ६४ विषय मर्मज्ञ विद्वानों ने भाग लिया। तीन दिनों तक चले इस परिसंवाद में ६४ शोध पत्र प्रस्तुत किए गए। त्रिदिवसीय परिसंवाद का क्रमिक विवरण इस प्रकार है -

उद्घाटन सत्र : २ अक्तूबर २०१५ को सायं २:३० बजे परिसंवाद का उद्घाटन सत्र प्रारम्भ हुआ। इस सत्र में मुख्य अतिथि के रुप में भारतीय इतिहास अनुसधान परिषद् दिल्ली के निदेशक डॉ. वाई.एस.राव उपस्थित थे। सत्र की अध्यक्षता अखिल भारतीय संकलन योजना के अध्यक्ष डॉ. सतीश मितल जी ने की और इसके विशिष्ट अतिथि अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के संगठन सचिव डॉ. बालमुकुन्द जी थे।

बीज भाषण : उद्घाटन सत्र की समस्त औपचारिकताएं पूर्ण होने के पश्चात् विषय के मर्मज्ञ विद्वान **डॉ. वेद प्रकाश अग्नि** जी ने अपना बीज भाषण प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने भाषण में सर्वप्रथम अपने शोध पत्र के आधार बिन्दु समक्ष रखे। इन बिन्दुओं को उन्होंने गांगे गौरे, भर्थरीहरि, बलराज तथा भरमौर, कांगड़ा एवं सिरमौर क्षेत्र की कुछ गाथाओं में विद्यमान ऐतिहासिक पक्षों के आधार पर विद्वानों के समक्ष रखा। भरमौर क्षेत्र की लोक गाथा गांगे-गौरे को उद्धृत करते हुए वेद अग्नि ने कहा

कि यह गाथा सृष्टि के ऐतिहासिक तथ्यों की ओर महत्त्वपूर्ण संकेत प्रदान करती है। सृष्टि सम्बन्धी लोकगाथाओं के सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि लोक में प्रचलित ये गाथाएं समष्टि और व्यष्टि चेतना के पुंज के आधार की ओर संकेत करती हैं। शिव और शक्ति सृष्टि का आधार है। गाथाकार इन तथ्यों के प्रति सजग दिखाई देते हैं। इसी प्रकार भर्थरीहरि की लोकगाथा में किंदरी का लोकगायन नादब्रह्म के ऐतिहासिक तथ्यों की ओर संकेत करता है। विभिन्न लोकगाथाओं के संदर्भों को उद्धृत कर डॉ. वेद अग्नि ने अपने तथ्यपरक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास किया कि इतिहास लेखन में लोकगाथाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भावी पीढ़ी अपने इस लोक इतिहास से तभी रूबरू हो सकती है यदि गाथाओं में निबद्ध इतिहास के इन बिन्दुओं को इतिहासकार अपनी लेखनी का विषय बनाए।

डॉ. बालमुकुन्द जी का उद्‌बोधन : डॉ. बालमुकुन्द जी ने सर्वप्रथम अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के पुरोधा माननीय मोरोपन्त पिंगले जी की संकल्पना और श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी के इतिहास लेखन के संकल्प के अनुरूप ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान के शोध परक कार्यों को रेखांकित किया। तत्पश्चात् उन्होंने कहा कि जनमानस में श्रौत परम्परा में जीवन्त रहने वाली लोकगाथा में इतिहास यथावत् जीवित रहता है। प्रमाण रूप में उन्होंने कहा कि यदि भूषण न होते तो समाज शिवाजी को नहीं जान पाता, सुभद्राकुमारी चौहान न होती जो लक्ष्मीबाई का इतिहास हमारे समक्ष न होता। इसी प्रकार गाथाकार न होते तो हम देवाख्यानों, सृष्टि के आख्यानों, राजाओं के चरितों और उनके इतिहास को न जान पाते। उन्होंने चिन्ता व्यक्त कि आज हम ज्यादा पढ़-लिख कर अपनी अस्मिता, सांस्कृतिक विरासत और इतिहास को भूलते जा रहे हैं। उनका संकेत भारतीय सभ्यता की भावी चुनौतियों की ओर था।

डॉ. सतीश मितल जी का उद्‌बोधन : इस सत्र की अध्यक्षता कर रहे डॉ. सतीश मितल जी ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि इतिहास अतीत की स्मृतियां हैं, इतिहास जीवन का ब्यौरा है तथा इतिहास एक दृष्टि है। उन्होंने कहा कि इतिहास आज के तथाकथित सभ्य चिन्तकों ने Use किया फिर उसे Confuse किया। उन्होंने कहा कि जब मैं अरस्तु को पढ़ता हूं तो इतिहास को नहीं पाता हूं परन्तु जब भारतीय परम्परा की लोकगाथा जैसी सामग्री को पढ़ता हूं तो इतिहास के महत्वपूर्ण तथ्यों को सहज रीति से जान पाता हूं। लोकगाथाएं ही हमें हमारे अतीत से जोड़ने की कड़ियां हैं। उन्होंने यह भी कहा कि स्मृति शोध संस्थान ने त्रिदिवसीय परिसंवाद में जो यह विषय समक्ष रखा, यह निश्चय ही भविष्य में इतिहास लेखन के लिए एक मील का पत्थर साबित होगा तथा शोधार्थियों के लिए कई शोध परक संभावनाओं को जन्म देगा।

डॉ. वाई.एस.राव जी का उद्‌बोधन : राष्ट्रीय परिसंवाद के मुख्य अतिथि ने अपने उद्‌बोधन में सर्वप्रथम ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान द्वारा विषय चयन के संकल्प की सराहना की। उन्होंने विषय के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को उद्‌घाटित करते हुए कहा कि लोकगाथाएं और लोकसाहित्य भारतीय इतिहास को जानने का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। उन्होंने कहा कि देश के विश्वविद्यालयों के

इतिहास के विभागों को अपने-अपने क्षेत्र की लोकगाथाओं का संग्रह कर उनकी ऐतिहासिक व्याख्या करनी चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि ब्रिटिशकाल के दौरान यह बात हमारे दिमाग में स्थापित की गई कि हमारा अपना कोई इतिहास ही नहीं है। अंग्रेजों ने केवल मात्र अपनी संस्कृति का व्याख्यान किया। हमें इसका चिन्तन करना चाहिए कि इसके लिए कौन जिम्मेवार है। साथ ही उन्होंने एक संकेत भी दिया कि पुरानी पीढ़ी को तो इतिहास बोध था परन्तु वर्तमान पीढ़ी इस इतिहास बोध से अजान व उदासीन है। किसी भी सभ्यता की युवा पीढ़ी जब इतिहास बोध के प्रति उदासीन हो जाती है तो वह सभ्यता मिटने की कगार पर होती है। उन्होंने सभी विद्वानों से चिन्तन, मनन और गहन शोध के पश्चात् लोगाथाओं में इतिहास के स्वरूप को राष्ट्र के समक्ष लाने का आह्वान किया।

इसी दिन सायं काल ५ बजे प्रथम तकनीकी सत्र प्रारम्भ हुआ जो ७ बजे तक चला। इस सत्र में ७ शोध पत्र पढ़े गए और उन पर गंभीर चर्चा हुई। ८.३० बजे सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया। इस संध्या में हिमाचल की लोकगाथाओं का गायन हुआ। गाथाओं में बिलासपुर जनपद की प्रसिद्ध गाथा मोहणा, मण्डी का बसोआ और चम्बा का मुसादा गायन सब को मन्त्रमुग्ध करने वाला था। इसमें डॉ. लाल चन्द, डॉ. हेम राज, दयालू राम और जयादेई देवी ने गाथाओं का प्रस्तुतिकरण किया।

३ अक्तूबर, २०१५ को प्रातः ९ बजे से सायं ६ बजे तक छः सत्र चले जिसमें ५५ शोध पत्र प्रस्तुत किए गए। जिनमें विभिन्न प्रान्तों की लोकगाथाएं प्रस्तुत की गई। इन शोध पत्रों में वीरांगनाओं के चरित, मध्यप्रदेश के दतिया जिले के रतनगढ़ मन्दिर का लोकगाथाओं में आख्यान, लोकगाथाओं में सृष्टि रचना विचार, हिमाचल प्रदेश की वीरगाथाएं - झेड़े, भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन का स्रोत-गाथा साहित्य, बाबा सिद्ध चानो बली की लोकगाथा में इतिहास, उच्च पश्चिमी हिमाचल के जन जातीय समुदायों की लोककथाओं में भविष्य कथन, छाअड़ी गाथाओं में देव आख्यान, गद्दी समुदाय की लोक गाथा, अंचली का ऐतिहासिक महत्त्व, चम्बा नरेश राजसिंह की बार, मण्डी का प्रसिद्ध शिवरात्रि पर्व, लाहुल में गोजङ लघु पर्व-एक लोकगाथा, साऊणिया तथा लामोच त्यौहार, Kinnauri God and goddess in folk lores, गढ़वाल में माधो सिंह भण्डारी की लोकगाथा का इतिहास पर प्रभाव, कुल्लुवी लोकगाथाओं में राजवंशों का वर्णन, हाब्बण गाथा, सिरमौर जनपद की लोकगाथाओं में इतिहास, कुल्लुई देव गाथाओं में कुल्लू की पुरातन राजधानी मकराहड़, लोकगाथाओं में देवर्षि नारद जी का वैदिक और लौकिक आख्यान, बलराज गाथा, लोकगाथाओं में वैदिक और लौकिक आख्यान, लोक गाथाओं में लौकिक देवता पल्थान शोली का आख्यान, मण्डी जनपद के ऊपरी क्षेत्रों में शिवरात्रि महोत्सव एवं लोकगाथाएं, करसोग क्षेत्र की लोक गाथाओं में इतिहास की झलक, निरमण्ड जनपदीय छाअड़ी गाथाओं में देवाख्यान, भारत-चीन युद्ध का शिमला जनपदीय लोकगाथा में इतिहास, गद्दी समुदाय की लोकगाथा 'अंचली' का ऐतिहासिक महत्त्व तथा श्री खण्ड महादेव आदि शोध पत्र विशेष महत्त्वपूर्ण रहे।

दिनांक ४.१०.२०१५ को प्रातः श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी की स्मृति में शोध संस्थान द्वारा प्रारम्भ किए गए, युवा इतिहासकार सम्मान से सम्बन्धित तकनीकी सत्र का शुभारम्भ हुआ। इस सत्र

में कुल ५ शोध पत्र युवा शोधार्थियों ने प्रस्तुत किए। पांचों शोध पत्रों का चयन समिति ने गहन विश्लेषण करके सर्वसम्मति से श्री विवेक शर्मा का चयन युवा इतिहासकार सम्मान के लिए किया।

समापन सत्र : दिनांक ४.१०.२०१५ को प्रातः ११:३० बजे त्रिदिवसीय परिसंवाद का समापन समारोह का आयोजन हुआ इस समारोह में मुख्य अतिथि हिमाचल के पूर्व मुख्यमन्त्री **प्रो. प्रेम कुमार धूमल जी** थे। इस समारोह की अध्यक्षता केन्द्रीय विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री जी ने की। विशिष्ट अतिथि के पंजाब के पूर्व स्वास्थ्य मन्त्री डॉ. बलदेव चावला जी भी इस अवसर पर उपस्थित रहे। इस सत्र के मुख्य बिन्दु निम्न हैं –

कार्यक्रम के आरम्भ में शोध संस्थान के अध्यक्ष **विजय मोहन कुमार पुरी** जी ने संस्थान की ओर से सब का अभिनन्दन करते हुए हर्ष व्यक्त किया कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों से यहां पधारे माननीय विद्वानों ने परिसंवाद को पूर्णतया सफल बनाया और आशा व्यक्त की कि भविष्य में भी सब का सक्रिय सहयोग संस्थान को उपलब्ध रहेगा।

डॉ. बलदेव चावला : पंजाब सरकार के पूर्व मन्त्री डॉ. बलदेव चावला जी ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि हमारे इतिहास में यह बताया जाता है कि आर्य बाहर से आकर भारत में बसे, जो बिल्कुल गलत है। आज के शोध से ये तथ्य पूर्णतय गलत साबित हो गए हैं। इसी प्रकार 1857 की महान क्रान्ति को इतिहासकारों ने गद्दर और विद्रोह जैसे शब्दों से व्याख्यायित कर भारत के ऐतिहासिक दृष्टिकोण को ही बदल डाला। उन्होंने इस तथ्य की ओर भी संकेत किया कि भारतीय इतिहास में सिकन्दर को महान शब्द से महिमामण्डित किया जाता है जबकि सच्चाई यह है कि सिकन्दर द्विगर्त के योद्धा वीरों के तीर से मारा गया था। उन्होंने शोधकर्ताओं से भारत के वास्तविक इतिहास को प्रस्तुत करने का आह्‌वान किया।

डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री : समारोह के अध्यक्ष डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री जी ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि देश में इतिहासकारों के दो समूह बन गए हैं। ये दोनों समूह ब्रिटिश शासन को तो विदेशी मानते हैं। परन्तु तुर्को, अरबों, ईरानियों, अफगानों और मुगलों के शासन को विदेशी मानने से इनकार करते हैं। इसीलिए मूलतः भारतीय इतिहास को लेकर भ्रम पैदा होता है। अग्निहोत्री जी ने यह भी कहा कि जो इतिहासकार अरबों से लेकर मुगलों तक के शासन को विदेशी नहीं मानते वे जानबूझकर तथ्यों को तोड़-मरोड़कर इन शासकों को लोक कल्याण कारी सिद्ध करने में जुटे हैं। परन्तु यदि इस कालावधि की लोकगाथाओं को खंगाला जाए तो उनके झूठ का स्वतः ही पर्दाफाश हो जाता है। प्रमाण रूप से सिरमौर जनपद की लोकगाथा 'मुगलों का पवाड़ा' को रखा जा सकता है। उन्होंने कहा कि इस गाथा में मुगलों की फौज द्वारा आक्रमण करने के तथ्य विद्यमान है तथा साथ ही यहां के स्थानीय लोगों द्वारा आत्मसम्मान से लड़ने और यहां की जनता की सुरक्षा के दृष्टिकोण भी इस गाथा में निबद्ध हैं। ऐसी अनेकों गाथाएं पूरे राष्ट्र में उपलब्ध होती है जिनसे उपर्युक्त बात प्रमाणित होती है।

प्रो. प्रेम कुमार धूमल : समापन समारोह के मुख्य अतिथि हिमाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमन्त्री प्रो. प्रेम कुमार धूमल ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि देश के इतिहास को संजोने में ठाकुर जगदेव चन्द

स्मृति शोध संस्थान बेहतरीन कार्य कर रहा है। उन्होंने कहा कि इस त्रिदिवसीय परिसंवाद में जो विषय शोधार्थ प्रस्तुत किया गया है, वह देश के इतिहास के चिन्तकों की आंखे खोलने वाला है। उन्होंने कहा कि इस परिसंवाद में प्रस्तुत किए गए शोध पत्र हमारे इतिहास का शानदार भण्डारण साबित होगा। उनका कहना था कि हमारे देश के इतिहास के साथ खिलवाड़ हुआ है। जो राष्ट्र अपने देश के सही इतिहास की जानकारी नहीं रख पाते उन राष्ट्रों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। उन्होंने एक महत्वपूर्ण तथ्य शोधार्थियों के समक्ष रखा। कुछ इतिहासकारों ने इतिहास के पन्नों को बदलने की कोशिश की है, लेकिन जो इतिहास लोकगाथाओं में विद्यमान है, उसे ऐसे इतिहासकार कभी भी नहीं बदल सकते। प्रो. प्रेम कुमार धूमल जी ने यह भी कहा कि स्व. ठाकुर रामसिंह जी ने ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी के माध्यम से हिमाचल में एक बहुत बड़े शोध संस्थान की विरासत खड़ी की है। यह संस्थान भारतीय इतिहास के प्रमाणिक स्रोतों का प्रयोग करके निष्पक्ष लेखन का महत्त्वपूर्ण कार्य करेगा। हिमाचल प्रदेश के आंचल में बसा यह संस्थान देश के लिए आधारभूत इतिहास लेखन का केन्द्र बनकर उभर रहा है। इस संस्थान से इतिहास लेखन की नई -नई दिशाएं उभर रही है, ऐसा इस त्रिदिवसीय परिसंवाद में प्रस्तुत किए गए शोध पत्रों से प्रमाणित होता है।

कार्यक्रम का समारोप करते हुए शोध संस्थान के महासचिव **श्री राजेन्द्र शर्मा** जी ने परिसंवाद को सफल बनाने में सब के महत्त्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डालते हुए धन्यवाद व्यक्त किया। इस परिसंवाद को सफल बनाने में शोध संस्थान के समन्वय प्रमुख **श्री चेतराम गर्ग** जी का सतत प्रयास विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

संयोजक- राष्ट्रीय परिसंवाद
प्राध्यापक, संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय अर्की,
जिला - सोलन (हि.प्र.)